प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

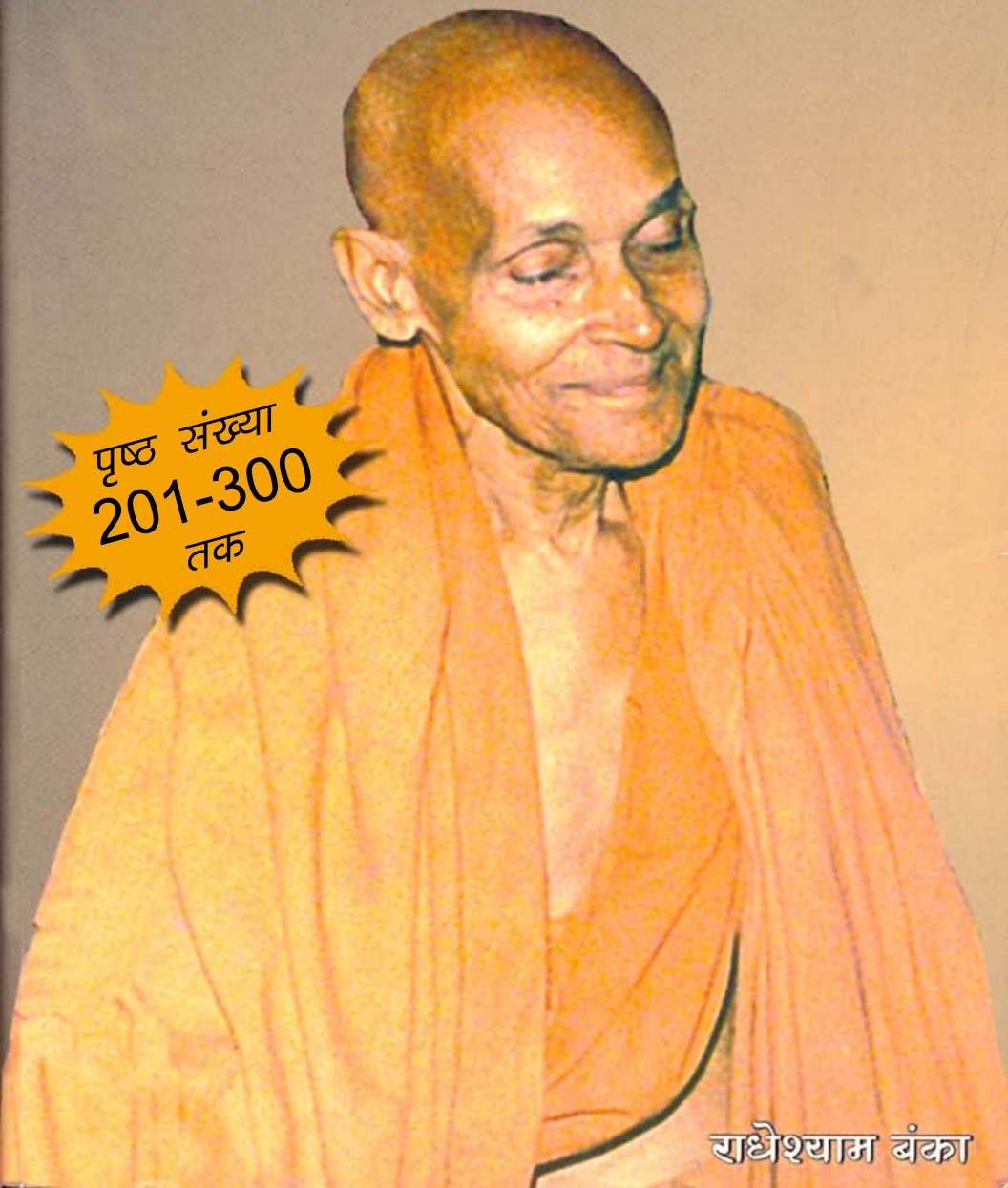

पृष्ठ संख्या
201-300
तक

राधेश्याम बंका

उपवास हो गया। किसी कारणसे कल बाबाने भिक्षा नहीं की थी, इससे सभीका मन खिन्न था और अब द्रव्य-स्पर्शसे पुनः लगातार उपवास हो गया। इससे व्यक्ति-व्यक्तिके मनमें बड़ी व्यथा थी, पर इसका कोई निवारण नहीं था। कठोर-व्रती बाबा अपने निश्चयमें शिथिलता नहीं आने देते। सभी मूक दर्शक बने हुए थे। मैं बाबाके पास बैठा हुआ था। तभी जिज्ञासाके रूपमें मैंने बाबासे पूछा – बाबा! आप रुपया या सिक्का या कागजके नोटका स्पर्श नहीं करते। क्या इसी प्रकार ड्राफ्ट या चेकका भी स्पर्श नहीं करते?

बाबाने बताया – यदि चेक या ड्राफ्टका स्पर्श हो जाय तो उसके लिये भी मुझे चौबीस घंटेका उपवास करना पड़ेगा। साधारण कागज तथा चेक या ड्राफ्ट, ये सभी ही कागज हैं, पर चेक या ड्राफ्ट तो रुपयेके रूपमें सम्मानित है, स्वीकृत है, समकक्ष है, अतः वह एक प्रकारसे रुपया ही है।

पुनः एक और जिज्ञासा – पहले ताँबेके छोटे ढेलेके टुकड़े सिक्केके रूपमें व्यवहृत होते थे। उनको सरकारने अब अमान्य कर दिया है। अब वे रुपयेके रूपमें नहीं, धातु-खण्डके रूपमें समझे जाते हैं। क्या उनका भी स्पर्श हो जानेसे आप उपवास करेंगे?

बाबाने कहा – अरे, धातु होते हुए भी कभी तो वे रुपयेके रूपमें माने जाते थे। उनका स्पर्श भी मेरे लिये द्रव्य स्पर्शके समान है। भूलसे भी यदि द्रव्य या स्त्रीका स्पर्श हो जाय तो मुझे उपवास करना ही है।

बाबाकी उक्तिको सुनकर मैं मौन था, पर मैं मन-ही-मन कह रहा था कि बाबा कितने अधिक कठोर व्रती हैं। स्वयंकी बात तो अलग रही बाबा तो यहाँतक सोचते और चाहते थे कि मेरे निजजनोंके जीवनकी चादरपर भी कोई भी दाग न रहे और न लगे।

* * *

उपर्युक्त घटनासे लगभग दस मास पहले २६ जनवरी १९७८ का एक प्रसंग है –

गीतावाटिकाकी कोठीके बरामदेमें दो बहिनोंके बीच वाद-विवाद छिड़ गया। पारस्परिक विवाद जब बढ़ने लगा तो परिस्थितिको शान्त करनेके लिये श्रीरामसनेहीजीने एक बहिनका हाथ पकड़ करके किनारे

कर दिया। श्रीरामसनेहीजीके बीच-बचाव करनेसे वातावरण शान्त हो गया। फिर यह बात सरकते-सरकते बाबाके सामने आयी। बाबा गम्भीर हो गये। श्रीरामसनेहीजी बाबाके चरणाश्रित जन हैं। चरणाश्रित जनके द्वारा होनेवाली चूक मेरी चूक है, ऐसा मानकर बाबाने दिनभर निर्जल रहनेका संकल्प कर लिया और निर्जल-व्रतकी जानकारी निज जनोंको दे दी।

* * * * *

सुखद और दुखद क्षण

सन् १९७८ ई.में श्रीयमुनाजीमें भीषण बाढ़के कारण श्रीमहाराजजी चाह करके भी वृन्दावनसे गोरखपुरके लिये प्रस्थान नहीं कर पाये। भाद्र शुक्ल अष्टमी-नौमीको गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी-महोत्सव भलीभाँति सम्पन्न हो गया और उत्सवके बारह-तेरह दिन बाद शनिवार २३-९-७८ को गोरखपुर पहुँचे श्रीमहाराजजी। साथमें ठाकुरजी आदि भी थे। श्रीमहाराजजीके पधारनेपर दो संतोंके सम्मिलनका वह दृश्य भी अद्भुत भावमय रहा। बाबाकी वासस्थलीके आस-पास कोलाहलशून्य जनशून्य प्रशान्त वातावरण है, यह वातावरण वृक्षों और पौधोंकी हरियालीसे बड़ा सुन्दर लग रहा था। बाबा हाथ जोड़े हुए खड़े थे स्वागत करनेके लिये। महाराजजीको समीप आते देखकर बाबाके नेत्रोंमें परम प्रसन्नता छा गयी। बाबा चाहते थे कि एक पद आगे बढ़कर अति पास आये हुए महाराजजीके हाथोंको अपने हाथोंमें ले लूँ, पर ज्यों ही महाराजजीने भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया, बाबाने भी भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। दोनों संतोंके मस्तक भूमिपर टिके हुए थे और इस छविको हमलोग बड़ी देरतक देखते रहे। बादमें बाबाने ही महाराजजीको उठाया तथा उनका हाथ पकड़े-पकड़े अपने आसनतक ले गये। महाराजजीको एक ऊँचे आसनपर बैठाकर बाबा अपने आसनपर विराजे।

दो संतोंके आमने-सामने बैठनेका यह दृश्य भी कितना भावपूर्ण था! कोई कुछ भी नहीं बोल पा रहा था। महाराजजी कभी बाबाकी हथेलियोंको अपनी हथेलीमें ले लेते थे और कभी महाराजजीकी हथेलियाँ कर-बद्ध मुद्रामें हो जाती थीं। रह-रह करके महाराजजी अपने उत्तरीय छोरसे नेत्रोंकी-नासिकाकी आर्द्रताको पोंछ रहे थे। भावोद्रेकके कारण बाबाकी मुखाकृति भी कुछ और प्रकारकी हो गयी थी। चाह करके भी

परस्परमें संभाषण सम्भव नहीं हो पा रहा था। बहुत-बहुत देर बाद मन्द एवं अस्पष्ट स्वरमें बाबाने अपने पास ही बैठे हुए ठाकुरजीसे पूछा – महाराजजीका स्वास्थ्य कैसा है?

ठाकुरजीने यही कहा – इस समय कोई परेशानी नहीं है।

कुछ क्षणके बाद श्रीमहाराजजीकी ओर उन्मुख होकर बाबाने कहा – मेरी राधाष्टमी तो आज मनायी जा रही है।

कल्पनातीत आत्मीयतासे अति संसिक्त इन शब्दोंको सुनकर महाराजजीके भाव उमड़ चले। सभी उपस्थित लोग बह पड़े। आन्तरिक विह्वलताके किंचित् शमित होनेपर थोड़ी देर बाद बाबाने फिर कहा – आप जानते हैं, मैं श्रीराधाष्टमी पण्डालमें आठ वर्षोंसे नहीं जाता। इस वर्ष श्रीराधाष्टमीका उत्सव पण्डालमें मनाया जा रहा था, पर मैं तो अपने इसी एकान्त स्थानपर इसी आसनपर बैठे-बैठे आपका ध्यान कर रहा था।

इतना सुनकर गद्‌गद वाणीमें महाराजजीने कहा – हम अपनी बात भी क्या बतायें? तन तो अवश्य श्रीवृन्दावन धाममें था, पर मन तो इसी स्थानपर आपके पास था। रह-रह करके आपका ध्यान हो रहा था कि आप ऐसे विराज रहे होंगे, आप इस प्रकार बोल रहे होंगे, आप इस प्रकारसे लोगोंसे मिल रहे होंगे।

इस वर्णनने तो सभीकी विभोरता बढ़ा दी। चित्तके सुस्थिर होनेपर महाराजजीने बाबाको आजानुलम्बित माला पहनायी, प्रसादी फूलोंसे बाबाके मस्तकपर वर्षा की। श्रीबाँकेबिहारीजीकी प्रसादी माला तथा प्रसादी फूल महाराजजी अपने साथ लाये थे। फिर ठाकुरजीने प्रसादी माला पहनायी। उन्हीं अवशिष्ट प्रसादी फूलोंसे बाबाने महाराजजीका पुष्पार्चन किया। ठाकुरजीने बाबाको प्रसादी बीरी दी। थोड़ी देर बाद बाबाने महाराजजीसे निवास-कुटीरमें पधारनेके लिये अनुरोध किया। बाबा स्वयं ही निवास-कुटीरतक महाराजजीको पहुँचाने गये। हाथमें हाथ लिये मार्गमें श्रीराधाकिशोरीके दिव्य भावोंकी चर्चा भी करते जा रहे थे। निवास-कुटीरकी विश्रामशय्यातक पहुँचा करके ही बाबा वापस लौटे।

अपने स्थानपर वापस लौटकर आसनपर बैठते-बैठते बाबा कहने लगे – महाराजजी तो प्यारकी मूर्ति हैं। उनके पधारनेसे आनन्दका सागर उमड़ने लगा। जबतक महाराजजी यहाँ रहेंगे, तबतक यह सागर उमड़ता ही

रहेगा। तो क्या इसका अर्थ यह है कि अबतक मेरे आनन्दका सागर नहीं उमड़ रहा था? वह उमड़ रहा था भीतर-ही-भीतर, पर जिस प्रकार पूनोंके चन्दाका दर्शन सागरको उद्वेलित कर देता है, उसी प्रकार मेरे आनन्दका सागर अब केवल भीतर ही नहीं, व्यक्त स्तरपर भी लहराता रहेगा।

महाराजजी गीतावाटिका पधारे थे २३.९.१९७८ के दिन और एक अनचाहा प्रसंग घटित हो गया तीन दिन बाद। बाबा प्रातःकाल टहल रहे थे। लकवेके कारण दाहिना पैर पहलेसे ही पूरी तरह काम नहीं कर रहा था। टहलते-टहलते ऊँची-नीची जगहमें पैर पड़ जानेके कारण पैर लड़खड़ा गया, बाबा एकदमसे गिर पड़े और दाहिने कंधेके पासकी हड्डी टूट गयी। वेदना भीषण, पर मुखपर वही चिर-सुलभ मुस्कान, चिर-उन्मुक्त हास्य। सारा बगीचा उमड़ पड़ा। पूज्या मैया ऊपरसे नीचे आयीं। महाराजजी आकर पासमें बैठ गये। सबकी भावनाएँ विकल थीं, नेत्र सजल थे, पर बाबा उस वेदनामें भी सूरदासजीके पद (जाको मन लाग्यो गोपाल सौं, ताहि और क्यों भावै हो) और हरीचन्दजीके पद (अहो हरि वे हू दिन कब ऐहैं) गा-गाकर महाराजजीको, ठाकुरजीको, उपस्थित आत्मीय जनोंको सुना रहे थे। बीच-बीचमें कहते भी जा रहे थे – इस प्रतिकूलताके रूपमें भी श्रीहरि ही पधारे हैं, उनका हार्दिक उल्लासके साथ स्वागत है। यह प्रतिकूलता भी श्रीहरिका मधुमय विलास है।

बाबा चौबीस घंटेमें एक बार माँके दर्शनार्थ जाया करते थे, अब माँ ही प्रतिदिन ऊपरसे नीचे उतरकर बाबाके पास चली आया करती थीं। ४-१०-७८ बुधवारकी बात है। हड्डीके टूटे नौ दिन हो चुके। इतने दिनोंमें कष्टमें कमी आ जानी चाहिये थी, पर वेदना बहुत बढ़ी हुई थी। कष्टको देखकर सबका जी भीतर-ही-भीतर घुटता रहता था, पर क्या किया जाये? महाराजजी अपने निवास कुटीरके पास न जाने कितनी बार खड़े रह करके दूरसे बाबाको देखते रहा करते थे। बाबा कह रहे थे कि आज शरीरके पोर-पोरमें सीमातीत पीड़ा है और प्रातःसे ही यह पीड़ा बनी हुई है। संध्याके समय जब बाबा भिक्षा कर रहे थे, तीन-चार कौर ले पाये होंगे कि भिक्षा करते-करते बाबा समाधिस्थ हो गये। शरीरका कष्ट शरीरके साथ, पर बाबा अब कहीं अन्यत्र थे। एक बार वृत्ति कुछ नीचे उतरी तो आप पूछने लगे – यह भीड़ क्यों है? क्यों, कोई उत्सव है क्या?

इतना कष्ट होनेके बाद भी आनेवाले अतिथियोंसे बाबा हँसकर जब बात करते थे, निज जनोंको जब परामर्श देते थे, परिक्रमा देते समय श्रीहरिवल्लभजीके साथ प्रसन्न वदनसे जब आलापचारी करते थे, तब ऐसे क्षणोंमें उनकी मुखाकृतिको देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बाबा भीषण कष्ट झेल रहे हैं। उनका उत्फुल्ल वदन और उन्मुक्त संलाप लोगोंको भ्रममें डाल देता, पर कष्ट तो कष्ट ही था।

* * *

हड्डी टूटनेके दूसरे दिन २७-९-७८ का एक प्रसंग है। बाबा शौचालय गये। शौचालयका द्वार बाहरसे ढाल दिया गया। बाबाने अपना कटिवस्त्र खोलना चाहा, पर वे खोल नहीं पाये। हड्डी टूटनेके कारण दाहिना हाथ तो बेकार था ही, पीड़ाकी अधिकताके कारण शरीर भी न पर्याप्त हिल सकता था और न अधिक झुक सकता था। बाँये हाथसे कटिवस्त्र खोलनेका प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली। ऐसा लगता है कि कटिवस्त्रका छोर कहीं किसी प्रकार अटक अथवा उलझ गया था। बाबाने खोलनेका प्रयास एक बार और किया, किंतु पुनः असफलता। पुनः प्रयास किया, पर प्रयासको व्यर्थ देखकर बाबा निराश मनसे खड़े हो गये, लगे देखने 'उनकी' ओर। 'वे' बाबाकी ओर देख रहे थे और बाबा 'उनकी' ओर। वे माने भगवान श्रीकृष्ण। कितनी देर तक परस्परावलोकन होता रहा, इसका निर्णय कठिन है, पर जब उधरसे ध्यान हटा तो बाबाने देखा कि कटिवस्त्र खुला पड़ा है। उनके प्रति बाबाका मन प्यारसे भर गया। बाबा कहने लगे – तुम्हारे अतिरिक्त मेरा है कौन? क्या तुम यह सब भी करते हो? सच है, तुमको कोई भी कार्य करनेमें संकोच नहीं होता।

हड्डी टूटनेपर बाबा एक और बात कहा करते थे – जब कभी कोई कष्ट शरीरपर आनेवाला होता था तो उसकी पूर्व-सूचना मिल जाया करती थी। हृदयाराध्य वे श्रीकृष्ण स्वयं आकर बता जाया करते थे, पर इस बार कोई पूर्व-सूचना नहीं मिली और यह तो उनके अतिशय प्यारका परिचायक है कि उन्होंने सूचना देनेकी आवश्यकता समझी ही नहीं।

* * * * *

तृतीय काष्ठ मौन व्रत

लगभग एक वर्ष पूर्व बाबाने कह दिया था कि ७ दिसम्बरको मैं मौन-व्रत धारण कर लूँगा। जिस समय यह बात हमलोगोंके कानमें पड़ी थी, उस समय तो कुछ ध्यान दिया नहीं गया। बस, यही सोचा जाता था कि ७ दिसम्बर १९७८ की तिथि, एक-दो माहकी तो बात ही क्या, अभी तो कई महीनोंके बाद है, अभीसे क्या सोचना-विचारना? पर सुखके ये क्षण पलक मारते-मारते बीत गये और उस तिथिमें अब केवल दो-अढ़ाई मास शेष रह गये थे। 'बाबा अब मौन ले रहे हैं और इस व्रतकी अवधि अनिश्चित है, अतः बाबासे अवश्य मिल लेना चाहिये' – इस प्रकारकी विकल भावनासे भावित लोगोंका गीतावाटिकामें आना आरम्भ हो गया। सितम्बर ७८ के अन्तिम सप्ताहमें बाबाके हाथके मूल भागकी हड्डी टूटी थी, तभीसे मिलनेवाले लोगोंके आनेका क्रम आरम्भ हो गया था। आनेवाले लोगोंकी यह शृंखला ६ दिसम्बरतक कभी खण्डित हुई ही नहीं। कहाँ-कहाँसे लोग नहीं आये? आनेवालोंकी संख्याको देखकर ऐसा भी कह सकते हैं कि भीड़की सँभाल और भोजनकी व्यवस्थाकी दृष्टिसे श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका लघु-रूप ही उपस्थित हो गया था। जो लोग आते थे, उनसे मिलकर बाबा उन्हें वापस भेज देते थे। यदि सभी अन्तिम ६, ७ दिसम्बरतक टिकते, तब तो भीड़ बहुत ही अधिक हो जाती। जिन-जिनको भी बाबाने विदाई दी, उन सभीको अपने रोम-रोमके प्यारसे आप्यायित करके विदाई दी।

न जाने कितने सहस्र व्यक्ति बाबासे जुड़े हुए हैं, यह जुड़ना भी तो आध्यात्मिकताको लेकर ही है। भगवदीय जीवन, आध्यात्मिक प्रकाश, साधनात्मक पथप्रदर्शन, संत-चरणाश्रय, महदाश्वासनकी लालसा लिये हुए ही तो लोग दूर-दूरसे आये थे। जो जिस भावसे आया, उसको वही मिला। बाबाकी अहैतुकी कृपाका द्वार इस समय पूर्ण उन्मुक्त था, बाबाका करुणा-विगलित हृदय इस समय परम उदार था। जिनके अस्तित्वका आधार प्रीति ही है, जिनके व्यक्तित्वकी रचना प्रीतिसे हुई है, जिनमें शिखसे नखतक प्रीति-ही-प्रीति है, प्रीतिका दान ही जिनके जीवनका कार्य है, ऐसे प्रीतिरसावतार बाबासे मिलकर ऐसा कौन है जो सुतृप्त तथा संसिक्त नहीं

हुआ ? जिस-जिसने अपनी जो-जो समस्या बाबाके सामने रखी, वह समस्या चाहे लौकिक हो, या पारलौकिक हो, या पारमार्थिक हो, सभी समस्याओंका समाधान बाबाने अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए दिया। मिलनेवाले लोगोंमें व्यक्ति सभी स्तरके थे। कोई संत तो कोई सांसारिक, कोई श्रेष्ठसाधक तो कोई साधारणसाधक, कोई आस्तिक तो कोई नास्तिक, कोई धनिक तो कोई निर्धन, कोई शिक्षित तो कोई अशिक्षित, कोई विनम्र तो कोई उद्धत, कोई शिष्ट तो कोई धृष्ट और इन सभी मिलनेवाले लोगोंके व्यवहार अपने-अपने स्तरके अनुरूप हुए, पर इससे बाबाको क्या ? बाबा तो अपने स्वरूपसे अच्युत थे। बाबा अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही सभीसे प्यारपूर्वक मिलते रहे।

एक व्यक्ति, जिसने बातोंकी सही और पूरी जानकारीके अभावमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना रखी थी, वह व्यक्ति तो बाबाको शारीरिक दृष्टिसे आघात पहुँचानेकी अभद्र भावना लिये हुए आया था, पर बाबा उससे भी मिले, कई बार मिले और आश्चर्यकी बात यह कि वह व्यक्ति भी वापस लौटा प्यारमें पगा हुआ। सांसारिक लोग अपनी संसारपरक समस्या लेकर, साधक लोग अपनी साधना-परक उलझन लेकर और संत लोग अपनी ईश्वरानुराग-परक चर्चा लेकर बाबाके पास आये। जो कोई भी आया, बाबाने सभीको पर्याप्त समय दिया, भले ही लोगोंसे मिलते-मिलते और बातें करते-करते बाबाके शरीर और वाणीकी स्थिति चिन्तनीय बन जाये। स्वास्थ्यको देखते हुए भिक्षा ग्रहण कर लेनेका कार्य सूर्यास्तके पूर्व हो जाना चहिये था, पर अब भिक्षा रातको प्रायः आठ-नौ बजे होने लग गयी।

बाबाको केवल ६ दिसम्बरतक बोलना था, अतः बाबाने अक्टूबर मासमें ही कह दिया था – आगन्तुक स्वजनोंसे जगत-सम्बन्धी चर्चा केवल ३० नवम्बरतक करूँगा, ३० नवम्बरतक ही किसीको उसके व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी सुझाव दे सकूँगा, इसके बाद मात्र शुद्ध पारमार्थिक भगवच्चर्चा होगी।

बाबाको अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं था। वे मात्र पारमार्थिक चर्चा, साधन-साध्यचर्चा, भगवच्चर्चा करना चाहते थे। इस कारण एक विचित्र प्रकारका वातावरण सृष्ट हो गया था। लोगोंको मानो यही लग रहा था कि बाबाके मौन होनेकी तिथि ७ दिसम्बर नहीं, ३० नवम्बर ही है। लोगोंको

ऐसा लग रहा था मानो अब प्रकट स्तरपर ३० नवम्बरको ही बाबासे सम्पर्क विच्छिन्न हो रहा है। 'बाबा यदि बोलेंगे तो न जाने कब बोलेंगे, यह सब अंधकारमें है!' —इस प्रकारके भावके प्रवाहमें बहते हुए सब और अधिक करुणाविष्ट हो गये।

इसी ३० नवम्बरको रासमण्डलीके स्वामी श्रीफतेहकृष्णजीके अन्तरकी दर्द-भरी तानसे तो करुणाका सागर ऐसा उफन पड़ा कि सब उसमें बह गये, यहाँतक कि बाबाके लिये भी अश्रु-संगोपन कठिन हो गया। बाबाके भीतर एक विचित्र आकर्षण था, उनके व्यक्तित्वमें एक ऐसी अद्‌भुत सम्मोहिनी शक्ति थी कि कोई भी सहृदय अपने-आप खिंचा चला आता था। बाबाके इसी चुम्बकीय आकर्षणसे खिंचकर ही तो एक-दो दिन पहले प्रणाम निवेदन करनेके लिये श्रीफतेहकृष्णजी वृन्दावनसे अकेले चले आये थे, उसी तरह चले आये थे, जिस प्रकार ये अन्य भक्तगण आये थे। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा ३० नवम्बरको सूर्यास्तके समय हुई। सभी भक्तगण श्रीगिरिराज-परिसरमें बैठे थे। बाबा परिक्रमा लगा रहे थे, ठीक इसी समय बाबाके चुम्बकीय आकर्षणको मिससे व्यक्त करनेके लिये श्रीफतेहकृष्णजीने एक गजल गायी —

शमा जलती है तो परवाने चले आते हैं,
सर के बल इश्क के दिवाने चले आते हैं।
अब न रोके से रुकेगी ये दिल की लगी,
लोग बेकार में समझाने चले आते हैं।।

फतेहकृष्णजीने ठीक ही गाया कि इधर-उधरके अनेक जागतिक कार्योंमें फँसे रहनेके कारण मुझे फुरसत कहाँ कि मैं तुम्हारे पास आ सकूँ? इस पर भी यदि तुम मुझे अपने पास खींच लो तो मैं क्या करूँ? मैं आया नहीं हूँ, आकृष्ट किया गया हूँ। मैं सामान्य स्तरका अति साधारण प्राणी भला क्या जानूँ कि भगवत्प्रीति किसे कहते हैं और प्रीतिका प्रवाह और उसका प्रभाव कैसा होता है, पर यदि तुम ही अपनी अहैतुक आत्मीयतावशात् प्रीतिकी पाठशालामें मेरा नाम लिखा दो तो मैं क्या करूँ? प्रीतिका पाठ मैं पढ़ना नहीं चाहता, पर यदि तुम ही अपने सहज स्वभावसे परवश हुए मुझे पढ़ाओ तो मैं क्या करूँ?

श्रीफतेहकृष्णजीने दूसरी गजल गायी –

मुझे सब जानते हैं मैं शराबी नहीं,
एक कतरा भी पीने की आदत नहीं।
जाम से जो पीऊँ तो गुनहगार होऊँ,
वो नजर से पिलायें तो मैं क्या करूँ?

इतने लोगोंको आकृष्ट करके, सबको स्नेह-सूत्रमें बाँध करके और सभीसे आन्तरिक घनिष्ठता स्थापित करके अब अलग होनेका इरादा तुमने कर लिया, तुम्हीं सोचो, यह कहाँतक उचित है? इस स्थितिपर अब तुम ही विचार करो। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि अनेकोंकी मति मूर्च्छित हो रही है, अनेकोंकी भावनाएँ बिलख रही हैं, अनेकोंका दिल दहल रहा है, फिर भी तुम मौन ले रहे हो? सब जान करके भी कठोर मौनका तुम इरादा कर रहे हो?

श्रीफतेहकृष्णजीने अपनी अन्तिम गजल गायी –

रुख से पर्दा हटा ले जरा साकिया,
रंग महफिल का एकदम बदल जायेगा।
जो कि बेहोश हैं होश में आयेंगे,
गिरनेवाला है वो भी सँभल जायेगा।।

अपने पर्दे का रखना है जो कुछ भरम,
सामने आना जाना मुनासिब नहीं।
एक बहशी से छेड़ अच्छी नहीं,
क्या करोगे अगर दिल मचल जायेगा।।

मेरा दामन तो जल ही चुका है मगर,
आँच तुम पै भी आये ये गवारा नहीं।
मेरे आँसू न पोंछो खुदा के लिये,
वरना दामन तुम्हारा भी जल जायेगा।।

बागवाँ! फूल तोड़े तो तोड़ इस कदर,
शाख हिलने न पाये ना आवाज हो।
वरना फिर ना चमन में बहार आयेगी,
हर कली का कलेजा दहल जायेगा।।

सिर्फ बैठे रहो, कुछ तसल्ली न दो,
वक्त मरने का कुछ मेरा टल जायेगा।।
ये क्या कम है मसीहा के रहने ही से,
मौत का भी इरादा बदल जायेगा।।

श्रीफतेहकृष्णजी गाते जा रहे थे और उनकी आँखोंसे आँसू झरते जा रहे थे। ये आँसू क्या केवल उन्हीं फतेहकृष्णजीके ही थे ? नहीं, सर्वथा नहीं। न जाने कितने-कितने हृदयोंके प्रतिनिधि बने हुए वे अश्रु-कण सबकी मूक व्यथाको वाणी प्रदान कर रहे थे। उन आँसुओंमें एक गहरी व्यथा थी और एक सच्चा प्रतिनिधित्व था – इस तथ्यकी साक्षी बन रही थीं अनेकोंकी संतप्त भावनाएँ, अनेकोंकी विकल अश्रु-धारा, अनेकोंकी आकुल सिसकियाँ। और इस सिसकते वातावरणने परिक्रमा-स्थलीमें खड़े बाबाके नयनोंको भी सजल बना दिया। सिसकते वातावरणकी वह शाम भी ढल गयी, फिर वह रात भी बीत गयी और फिर सिसकते-सिसकते एक-एक करके शेष छः दिन भी व्यतीत होने लगे।

इन छः दिनोंमें बाबा लोगोंसे अकेलेमें मिलते तो थे, पर कहाँतक मिलें ? जिन लोगोंको बाबाने विदाई दे दी थी, उनमेंसे कई दुबारा आ गये बाबाके प्यारमें खिंचे-खिंचे। बाबा तो एक और मिलनेवाले अनेक, अतः एक मध्यम मार्ग यह निकाला गया कि परिक्रमाके बाद बाबा सभी आगन्तुक लोगोंके सामने सामूहिक रूपसे अपना संदेश दें। दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठवें दिनांकोंको बाबाने अपनी अमृत वाणीद्वारा सभीको दिव्योपदेश दिया। उसका सार यही था –

मानव जीवन भगवानका अद्‌भुत वरदान है। इस मानव शरीरके कारण ही पशु-पक्षी-कीट-पतंग आदि-आदि योनियोंसे हमारी श्रेष्ठता है। इस अद्‌भुत वरदानकी हम उपेक्षा न करें। अब और अधिक भोग-परायण न बनें। कुछ तो भगवानकी ओर उन्मुख हों। भगवानके आश्रयसे सर्वसम्भव है। हम कैसे भी अपराधी-दीन-पतित क्यों न हों, भगवानका द्वार हमारे लिये सदा खुला हुआ है। भगवान कभी नाराज होते ही नहीं। उनके जितना सुहृद् भी कोई है ही नहीं। मैं अपने जीवनके अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ कि भगवानपर निर्भर होनेवालेका कोई काम अटकता ही नहीं। वे लौकिक कार्य, जो प्रतिकूलताओंके जमघटके कारण सर्वथा असम्भव कहे जा सकते हैं, भगवत्कृपाका आश्रय लेते ही सभी पूर्ण रूपसे सम्भव हो जाते हैं। भगवानकी स्मृति सारे अमङ्गलोंको विनष्ट करती है, परम शान्ति प्रदान करती है,

जीवनको पवित्र बनाती है और अन्तमें भगवानकी प्राप्ति कराती है। भगवत्स्मरणका फल सद्यः मिलता है, एक बार भगवानकी ओर उन्मुख होकर तो देखें। भगवानपर निर्भर रहनेवाले आस्तिकके जीवनमें प्रभु-विश्वास एक ऐसी अनोखी वस्तु है, जो जीवनमें असम्भव-से लगनेवाले कार्योंको भी सम्भव कर देती है।

इन छः दिनोंमें प्रतिदिन बाबा लोगोंसे अकेलेमें अलग मिलकर भी परामर्श देते रहे, पर दो दिसम्बरसे पाँच दिसम्बरतक, इन चार दिनोंमें सामूहिक रूपसे जो बातें बाबाने बतायीं, उन सब बातोंसे भी परेकी कोई विशेष बात, अपने जीवनकी कोई लोकातीत विशेष बात बाबा अन्तिम दिवस ६ दिसम्बरको सबके समक्ष कहना चाहते थे, किन्तु प्रश्न यह था कि बतायें किस प्रकारसे? और पंजाबकी एक श्रेष्ठ विभूतिके बड़े ही दर्दीले प्रसङ्गके बहाने बाबाने अपनी वह अति विशेष लोकोत्तर बात संकेत रूपमें कह दी।

अपना दिव्य संदेश प्रदान करनेके लिये बाबाने जिन श्रेष्ठ विभूतिके जीवन-प्रसंगका उदाहरण दिया, प्रसंगानुरोधसे उनके एक पूर्वजका अति संक्षिप्त परिचय देना समुचित रहेगा। पंजाबके भाई श्रीपरमानन्दजीको प्रखर देशभक्ति, प्रबल धर्मभक्ति और प्रवर प्रभुभक्ति अपने पूर्वजोंसे मिली थी। गुरु श्रीगोविन्द सिंहजीके पिताश्री गुरु श्रीतेगबहादुर सिंहजीको धर्म-मदान्ध विदेशी-विधर्मी मुसलमान शासक औरंगजेबने आदेश दिया – आप अपना हिन्दू धर्म त्याग करके इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें, नहीं तो आपका सिर कत्ल कर दिया जायेगा।

जब इनके साथी भाई श्रीमतिदासजीने सुना तो उन्होंने बादशाह औरंगजेबसे कहा – यह कार्य आप मुझसे आरम्भ करें।

भाई श्रीमतिदासजीसे जब विदेशी मजहब स्वीकार करनेके लिये कहा गया तो उन्होंने अपने मुँहका थूक बाहर फेंकते हुए केवल इतना ही कहा – आप मेरे हिन्दू धर्मका अपमान नहीं कर सकते, भले ही आप और कुछ कर लें।

मजहबी जुनूनमें डूबे हुए मुगल बादशाहको बड़ा तिरस्कार-बोध हुआ। इसके फलस्वरूप बादशाहने यह आदेश दिया कि मतिदासको चाँदनी चौकमें खड़ा करके चीर दिया जाये। दिल्लीके चाँदनी चौकमें आरा सिरपर रखकर भाई श्रीमतिदासजीकी खोपड़ीके दो भाग कर दिये गये वैसे ही, जैसे

खरबूजेके दो टुकड़े बराबर-बराबर कर दिये जाते हैं। चीरे जाते समय आरा ज्यों-ज्यों देहमें बढ़ता जाता, त्यों-त्यों 'राम-राम' की ध्वनि ऊँची होती जाती।

वीर शिरोमणि भाई श्रीमतिदासजीके वंशज थे भाई श्रीपरमानन्दजी, जिन्हें राष्ट्रभक्तिके कारण अँगरेजी सरकारसे पहले फाँसीकी सजा मिली और बादमें उसे बदल करके काला पानी अर्थात् आजीवन कारावासके दण्डके रूपमें कर दिया गया। इन्हीं श्रीपरमानन्दजीके भाई श्रीबालमुकुन्दजी और उनकी धर्मपत्नीके जीवनका उदाहरण देते हुए ६ दिसम्बर १९७८ को बाबाने परिक्रमा-स्थलीमें उपस्थित सभी भक्तोंके सामने कहा –

पंजाबके विख्यात देशभक्त हो गये हैं भाई श्रीपरमानन्दजी। अपनी देशभक्तिके कारण श्रीपरमानन्दजीको कालेपानीकी कठोर जेल-यातना भी भुगतनी पड़ी। इन्हींके एक सहोदर भाई थे श्रीबालमुकुन्द। भाई श्रीबालमुकुन्दके हृदयमें बचपनसे ही देशप्रेमकी आग लगी हुई थी। वे बचपनसे ही बड़े विरक्त थे। मन-ही-मन वे अपने प्राणोंको देशकी बलिवेदीपर न्यौछावर कर चुके थे। वे चाहते थे कि भले मेरे प्राण चले जायें, पर मेरा देश भारत स्वतन्त्र हो जाये। प्रभु-प्रदत्त अपनी यत्किंचित् क्षमता और योग्यताके अनुसार इस दिशामें जितना प्रयास वे कर सकते थे, सतत करते रहते थे। बालमुकुन्दजीके इस रवैयेको देखकर घरवालोंने उनका विवाह कर दिया, जिससे कि बालमुकुन्दका ध्यान बँट जाये और मन संसारमें फँस जाये। उनकी पत्नीका नाम था रामरिक्खीबाई। रामरिक्खीबाई थी बड़ी सुन्दर, बड़ी सुशीला, बड़ी सद्गुणसम्पन्ना, बड़ी अनुगता, बड़ी पति-परायणा, इतना होकर भी वह रामरिक्खीबाई पति बालमुकुन्दको अपने मोह-पाशमें बाँध नहीं पायी। विवाह हो जानेके बाद भी श्रीबालमुकुन्दके हृदयमें देशभक्तिकी वह आग न घटी, न मिटी। अपनी धुनके पक्के बालमुकुन्दजी अपने ढंगसे देशसेवाके कार्यमें पूर्ववत् संलग्न रहे। बात शायद सन् १९११ की है। वह जमाना कठोर अँगरेजी शासनका था। किसी बम-काण्डमें अँगरेजी सरकारने बालमुकुन्दजीको पकड़ लिया और जेलमें डाल दिया। भाई श्रीपरमानन्दजी सतत प्रयत्नशील थे कि मेरा सहोदर भाई जेलसे छूट जाये। घरमें अकेली रामरिक्खीबाईको भी पता चल गया कि मेरे पति जेलमें हैं। उधर बालमुकुन्दजीको जेलकी चहारदिवारीमें बन्द कर दिया गया था और इधर रामरिक्खीबाईने कमरेकी चार दीवालके भीतर स्वयंको बन्द कर लिया। उसने जानना चाहा कि मेरे पतिको जेलमें कैसा भोजन मिलता है। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उनको तो

धूलि-सनी आटेकी रोटियाँ और धूलि-मिली दाल खानेको मिलती है तो उनका कलेजा काँप उठा। अब जब भी रामरिक्खीबाई भोजन करती, अपनी रोटी-दालमें रेत मिला लिया करती। कोई पूछता कि तुम यह क्या करती हो तो वह रामरिक्खीबाई यही कहती – वे तो जेलमें धूलिभरा भोजन करते हैं और फिर क्या मैं यहाँ सुन्दर भोजन करूँ?

भाई श्रीपरमानन्दजीके अथक प्रयासके बाद भी श्रीबालमुकुन्दजी अपराधसे विमुक्त नहीं हो सके। अँगरेजी सरकारने बालमुकुन्दको प्राण-दण्डकी सजा सुना दी और उनको फाँसीके तख्तेपर लटका दिया गया। उन दिनों राष्ट्रवीरोंके शवको अँगरेजी सरकार नहीं दिया करती थी। शोक-निमग्न परमानन्दजी आये घरपर, पर किस प्रकार यह करुण समाचार अपनी अनुजवधू रामरिक्खीबाईको दिया जाय। उनको खिन्न देखकर रामरिक्खीबाईने पूछा – भइयाजी! आज आप इतने उदास, अत्यन्त उदास क्यों हैं? क्या बात है, सच-सच बता दीजिये।

भाई परमानन्दजी बड़ी कठिनाईके साथ इतना ही कह सके – भाई बालमुकुन्द इस संसारमें अब नहीं रहे।

इतना सुनना था कि रामरिक्खीबाई पागल-सी हो गयी। वह पलथी मार करके बैठी हुई थी, उसने अपने हाथ जोड़ लिये और पागलिनीकी तरह प्रलाप करती हुई बोलने लगी – 'प्रभो! क्षमा कर दो, थोड़ी देरी हो गयी। प्रभो! क्षमा कर दो, थोड़ी देर हो गयी' ऐसा उसने कई एक बार कहा और उसका शरीर काँपने लगा। कहते-कहते रामरिक्खीबाईने अपना मस्तक नीचे किया और फिर वह नत-मस्तक कभी उठा ही नहीं। उसकी आत्मा अपने परमात्माके पास थी और उसकी मिट्टी इस धरतीपर। इस धरतीवाले उस प्राणशून्य शरीरका संस्कार करते रहे।

भारत-भूमिके इतिहासके पृष्ठ इस प्रकारके प्राणोत्सर्गकी दिव्य गाथाओंसे भरे पड़े हैं। देशप्रेमकी, धर्मप्रेमकी, पतिप्रेमकी आग अनोखी होती है और इससे भी बढ़कर अनोखी होती है भगवत्प्रेमकी आग।

भगवत्प्रेमकी आग कैसी महदद्भुत होती है, इसे अनुभव कर पाता है कोई महाभाग्यशाली मानव ही। हमलोग कल्पना ही नहीं कर सकते कि भगवत्प्रेमकी आग जल जानेपर उस भाग्यशालीकी कैसी दशा हो जाती है। भगवानके प्रेमके आवेशमें जब कोई पागल हो उठता है तब उस प्राणोन्मादी पवित्र आगमें जलनेवालोंकी स्थिति बड़ी विचित्र होती है। मैं चाहता था कि

यदि आज भी एक-दो-चार लोग भगवत्प्रेमकी ओर अपना कदम बढ़ाते तो प्रत्यक्ष हो जाता कि यह कितनी श्रेष्ठ वस्तु है, पर अधिकांशका जीवन व्यर्थ जा रहा है। भगवत्प्रेमकी दिशाकी ओर चलनेपर तथा भगवत्प्रेमके राज्यमें पहुँचनेपर कितनी प्रसन्नता कितनी शान्ति कितनी शुचिता कितनी सरसता मिलती है, यह तो मात्र-अनुभवगम्य है, मात्र-स्वसंवेद्य है। जिसके जीवनमें भगवत्प्रेमकी आग प्रज्वलित है, उसपर भगवानकी अपार कृपा है। यह ऐसा विषय है, जिसे वाणीद्वारा समझाया ही नहीं जा सकता।

अब कुछ घंटोंके बाद ही मैं मौन हो जाऊँगा। किस कामके लिये मैं निमन्त्रित किया गया हूँ, मुझे पता नहीं है। इस मौनके लिये भगवानने निमन्त्रण क्यों दिया है, हो सकता है कि मौन लेनेके बाद एक-दो दिनमें ज्ञात हो जाये, पर मैं तो वापस आऊँगा नहीं हेतुको कहनेके लिये। इस विदाईकी वेलामें मैं सभीसे क्षमा-याचना करता हूँ। मेरा भरसक प्रयत्न रहा है कि मैं किसीका जी नहीं दुखाऊँ, पर यदि मेरेद्वारा कोई ऐसी क्रिया हो गयी हो तो उसके लिये बारम्बार क्षमा-याचना है। एक बात ऐसी है कि जिसपर शायद आप लोग विश्वास नहीं करेंगे। सच्ची बात यह है कि वह क्रिया मेरे द्वारा नहीं हुई है। कोई मेरे अन्दर है, वह मेरे अन्दर था, है और रहेगा भी, उसीने मेरे द्वारा वैसी क्रिया करवायी है। क्रियाका कर्ता कोई और है, पर हो रहा है मेरा नाम कि बाबाने ऐसा किया, बाबाने ऐसा कहा। अस्तु, ऐसी जो भी क्रिया मेरे द्वारा हुई हो, उसके लिये बार-बार क्षमा-प्रार्थना है। जीवनमें कभी भी किसी प्रकारसे भी यदि किसीका मेरे द्वारा जी दुखा हो तो मैं उस व्यक्तिसे, वह व्यक्ति चाहे दूर हो चाहे पास हो, हाथ जोड़कर, उसके चरणोंकी अनन्त वन्दना करते हुए मैं उससे क्षमा चाहता हूँ। बस, इतना ही मुझे कहना है।

* * *

परिक्रमाका वातावरण कितना सकरुण था, कितना गम्भीर था, यह बतलाना कठिन है। परिक्रमा-स्थलीसे बाबा अपनी कुटियापर आये। बाबूजीका निधन सन् १९७१ में हुआ था, तबसे लेकर अबतक इन साढ़े सात वर्षोंमें अनेक आवश्यक पत्र-पुस्तक-कागज आदि बाबाके पास इकट्ठे हो गये थे। पुस्तकें यथा-योग्य व्यक्तियोंको दे दी गयीं, अधिकांश कागज-पत्र जला दिये गये तथा अत्यन्त आवश्यक कागज-पत्र भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको दे दिये गये। इस कार्यको अपनी उपस्थितिमें सम्पन्न करवाकर बाबा माँके पास

गये। वहाँ बहुत देर रहे। इसके बाद स्नान तथा भिक्षा की। यह करते-करते रात्रिके डेढ़ बज गये। भक्तोंका, अतिथियोंका, नगरके व्यक्तियोंका, वाटिकावासियोंका समुदाय ज्यों-का-त्यों बाबाकी कुटियाके सामने उपस्थित था और बाबाकी हर क्रियाको एकटक दृष्टिसे निहार रहा था। भिक्षाके बाद बाबा चार-पाँच व्यक्तियोंसे अन्तिम बार मिले। सबसे अन्तमें बाई तथा जीजाजी (परमादरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) से मिले, फिर शौच गये।

शौचसे निवृत्त होते-होते सवा तीन बज गये। बाबा अब सबके सामने खड़े हैं और सबको अन्तिम प्रणाम कर रहे हैं। अपने कुटीरके पास खड़े हैं बाबा सिक्त-नेत्र, प्रीति-विह्वल, मूक-अधर, कर-बद्ध, नत-मस्तक और उनके सामने खड़ा है सारा समुदाय व्यथित-नेत्र, मथित-हृदय, रुद्ध-कण्ठ, शब्द-रहित, स्पन्दन-शून्य, प्रतिमा-समान। इस समयका वर्णनका न करना ही उत्तम है।

श्रीहरिवल्लभजीने सकरुण स्वरमें अन्तिम विनती की –

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँहि अँधेरो।।
साधन और नहीं या कलि में, जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहै, दुबिध आँधरो, बिना मोल को चेरो।।

और ७ दिसम्बर गुरुवारकी ब्राह्म-वेलामें बाबाने अपना मौन व्रत ले लिया।

* * * * *

श्रीगिरिराज-परिक्रमा के नियम

बाबाने जब दिसम्बर १९७८ में काष्ठ मौन लिया था, तब श्रीगिरिराज-परिक्रमाके नियमके निर्वाहके बारेमें कुछ व्यवस्था सम्बन्धी बातें उनसे पूछी गयी थीं। उस समय बाबाने अनेक तथ्योंकी चर्चा करते हुए कहा था – मैं तो नित्य श्रीगिरिराज परिसरमें निवास करता हूँ। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगानेके नियमका निर्वाह भी तबतक होता ही रहेगा, जबतक मेरी स्मृति ठीक है। इसका एक विशेष कारण है। जब मैंने यहाँ गीतावाटिकामें श्रीगिरिराजजीकी स्थापना करके परिक्रमा लगानी आरम्भ की थी, तब प्रियतम नीलसुन्दरने अत्यधिक ऐकान्तिक सम्बोधनसे सम्बोधित करते हुए

मुझसे कहा था कि तुम्हारे परिक्रमाके नियमसे अन्योंको लाभ होगा। जो भी इन श्रीगिरिराजजीका दर्शन-वन्दन-अर्चन करेंगे और परिक्रमा लगायेंगे, उनकी व्रजभावकी ओर गति होगी तथा उनके जीवनमें व्रजभावका उन्मेष होगा। प्रियतमके ये उद्‌गार मेरे लिये महत्त्व रखते हैं। जहाँतक परिक्रमाके नियम निर्वाहका प्रश्न है, परिक्रमाका करना या न करना, ये दोनों बातें मेरे लिये समान अर्थ रखती हैं। जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये लोग श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगाया करते हैं, वे नीलसुन्दर तो नित्य मेरे पास रहते हैं, अतः परिक्रमाके नियमका अनुशासन मुझपर नहीं है। ऐसा होकर भी नीलसुन्दरके वचनका अनुपालन करनेके लिये मुझे परिक्रमा सदैव करनी ही है।

इस नियमके निर्वाहमें बाधाएँ कम नहीं आयीं। कभी अत्यधिक अस्वस्थता, कभी घोर अन्तर्मुखता और कभी नितान्त व्यस्तता, इस प्रकार समय-समयपर कठिन प्रतिकूलताएँ सामने आयीं, परन्तु इन सारी विकट परिस्थितियोंके मध्य नियमका निर्वाह अखण्ड रूपसे होता रहा और इस अखण्ड निर्वाहने गीतावाटिकाके आध्यात्मिक वातावरणका कल्पनातीत रीतिसे परिपोषण किया है। श्रीगिरिराज-परिक्रमा बाबाके लिये 'भाव-वितरण' का एक सशक्त माध्यम बन गया था। बाबा परिक्रमा लगा चुकनेके बाद सभी उपस्थित भक्तोंपर दृष्टि-पात किया करते थे। इस दृष्टि-पातको वस्तुतः कहना चाहिये 'भाव-दान'। इस प्रक्रियासे बाबा सबको भावका दान किया करते थे।

* * * * *

परिवर्तन के प्रति अरुचि

बाबाने ७ दिसम्बर १९७८ को जब काष्ठ-मौन व्रत लिया, तब व्रत लेनेके पूर्व उन्होंने यही कहा था कि मेरी सेवामें केवल तीन व्यक्ति रहेंगे रामसनेहीजी, भगतजी और गुरुचरणजी। उनके इस आदेशको सुनकर कई लोगोंका मन बड़ा व्यथित हुआ कि उनके शरीरकी जैसी स्थिति है तथा जिस प्रकारका ऐकान्तिक जीवन वे व्यतीत करना चाहते हैं, उसको देखते हुए सबको यही लग रहा था कि केवल तीन व्यक्तियोंसे काम नहीं चल पायेगा। सेवा-कार्यकी आवश्यकताको देखते हुए सब चाह रहे थे कि कम-से-कम डा.लालदेव सिंह तथा भीमसेनजी चोपड़ाको सेवा करनेके लिये अनुमति मिलनी ही चाहिये। निकटवर्ती आत्मीय जनोंकी भावनाओंको वाणी दी

ठाकुरजी (घनश्यामजी शर्मा) ने। ठाकुरजीके काफी प्रयासके बाद बात बन गयी और डाक्टर साहब तथा चोपड़ाजीको सेवा-कार्य करनेके लिये अनुमति मिल गयी। अब बाबाकी सेवामें पाँच व्यक्ति रहने लगे।

मौन व्रत ले लेनेके कुछ दिन बादकी बात है। इन दिनों बाबाके शरीरको दबानेकी सेवा डाक्टर साहब और चोपड़ाजी किया करते थे। एक दिन किसी अन्य काममें लगे रहनेके कारण चोपड़ाजी पैर नहीं दबा पाये। चोपड़ाजीके स्थानपर रामसनेहीजी पैर दबाने लगे। मौन व्रतके पहले रामसनेहीजी बाबाके पैर दबाया ही करते थे, अतः वे दबाने लगे तो कोई बड़ी या नयी बात नहीं थी। बाबा यही समझ रहे थे कि चोपड़ाजी पैर दबा रहे हैं। ज्यों ही उनको यह पता चला कि रामसनेहीजी दबा रहे हैं, उन्होंने अपना पैर समेट लिया। इतना ही नहीं, अब शरीर दबवाना भी उन्होंने बन्द कर दिया। सबको बड़ा दुःख हुआ, पर विवशता थी। तनिकसे परिवर्तनके कारण शरीर दबवानेकी सेवा बन्द हो गयी। किसीने कोई प्रमाद नहीं किया और मर्यादाका अतिक्रमण नहीं किया, इसके बाद भी तथ्य यह था कि बाबाको कोई परिवर्तन रुचिकर नहीं। कुछ प्रयास किया गया, पर वह सफल न हो सका।

कई सप्ताह बीत गये। सन् १९७९ के मार्च मासमें टब-स्नान कराते समय डाक्टर साहबको और चोपड़ाजीको यह दिखलायी दिया कि बाबाका दाहिना पैर बायें पैरकी अपेक्षा दुबला हो गया है। इसी दाहिने पैरमें लकवेका झटका आया था। इन दिनों जब बाबा परिक्रमाके लिये आते थे तो इस ढंगसे चलते थे, मानो अब गिरे, तब गिरे। वे एक-एक कदम बहुत सँभाल-सँभालकर रखते थे। हम सभीको आश्चर्य होता था कि यह क्या हो गया। इस दुबलेपनको देखकर डाक्टर साहबने कहा – इस पैरकी नसें सूखती जा रही हैं और इसी कारण दाहिना पैर शरीरके भारको सँभाल नहीं पा रहा है, अतः बाबाको बहुत सँभल-सँभल करके कदम रखना पड़ता है।

अब प्रश्न यह था कि इसका इलाज क्या है? चोपड़ाजीने कहा – प्राकृतिक चिकित्सक डा.श्रीहीरालालजी जिस प्रकार मालिश किया करते थे, उस प्रकारसे मालिश हो तो शायद पैरोंकी नसोंमें सक्रियता बढ़े, पर अब तो बाबाने शरीर दबवाना ही बन्द कर दिया है।

बड़ी उलझन थी कि बात किस प्रकार बने। चोपड़ाजीने साहस करके बाबासे कहा – आपके दाहिने पैरकी स्थिति नाजुक है। पैरकी नसें सूखती

चली जा रही हैं। मालिश करनेसे सुधारकी आशा है। आप मालिश करनेके लिये आज्ञा प्रदान करें। मालिश केवल डाक्टर साहब किया करेंगे और कोई दूसरा मालिश नहीं करेगा। मालिश करनेसे सूखापन दूर होगा।

थोड़ी देर अनुनय-आग्रह करनेके बाद बाबाने अनुमति प्रदान कर दी, किन्तु अनुमति दी केवल पाँच मिनट मालिश करनेके लिये।

श्रीचोपड़ाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई कि मालिश करनेके लिये अनुमति मिल गयी। उनको विश्वास था कि यदि स्वास्थ्यमें सुधार दिखलायी दिया तो बादमें कह-सुनकर मालिश करनेकी अवधि बढ़वायी जा सकती है।

* * * * *

ग्रन्थावलोकन में निमग्नता

बाबाने ७ दिसम्बर १९७८ को तीसरी बार जो काष्ठ-मौनका व्रत लिया, इसमें वैसी कठोरता नहीं थी, जैसी पहले लिये हुए व्रतोंमें थी। टिन-शेडके रूपमें तीन ओरसे सर्वथा खुली हुई यह नयी कुटिया ही बाबाकी निवास-स्थली थी। इस निवास-स्थलीके चारों ओर पर्याप्त खुला स्थान छोड़कर एक घेरा बना दिया गया, जिससे कोई व्यक्ति घेरेके भीतर अचानक जा न सके। घेरेके भीतर केवल वे ही जाते थे, जिनको समय-समयपर कोई सेवा करनी होती थी।

७ दिसम्बरके एक सप्ताह बादकी बात है। मैं बाबाकी कुटियाकी ओर गया। घेरेके बाहरसे ही मैंने उनको प्रणाम किया और खड़े-खड़े उनका दर्शन करता रहा। मैंने देखा कि कुटियामें चौकीके ऊपर जो गैरिक बिस्तर बिछा हुआ है, उसपर बाबा सहजासनसे बैठे हुए हैं और कोई पुस्तक हाथमें लेकर देख रहे हैं। भगतजीसे पूछनेपर पता चला कि वे श्रीकृष्णलीला चिन्तन ग्रन्थको पढ़ रहे हैं। बाबा ग्रन्थावलोकनमें निमग्न थे।

श्रीरामचरितमानसकी एक चौपाई है –

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।
हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ।।

इस चौपाईमें 'सुनहिं' शब्द आया है। 'सुनहिं' शब्दके स्थानपर थोड़ी देरके लिये 'पढ़हिं' शब्द कर दिया जाय तो भी इस चौपाईके भावार्थमें कोई अन्तर नहीं आयेगा। इस चौपाईका भावार्थ आज साकार रूपमें मेरे सामने

विद्यमान था।

काष्ठ मौनके उपरान्त यह एकान्त वातावरण और ये रसमय ग्रन्थ बाबाको और भी अधिक गहरे लीला सिन्धुमें उतार देते होंगे। ग्रन्थावलोकनमें निमग्न बाबाको भला क्या पता कि कोई भरी-भरी आँखोंसे मुझे निहार रहा है अपने हृदयमें भर लेनेके लिये। मैं बहुत देरतक खड़े-खड़े वह छवि निहारता रहा।

* * * * *

मधुराष्टक का गायन

काष्ठ मौनका व्रत लेनेके बाद बाबाके पास नितान्त एकान्त-ही-एकान्त था। व्रत लेनेके पहले उनके पास मिलनेवालोंकी भीड़ लगी रहती थी। वे लोग बाबाके सामने अपनी सांसारिक-पारिवारिक समस्याओंको रखा करते थे, जिससे कोई हल प्राप्त हो सके। इन सब तरहकी बातोंसे घिरे रहनेके कारण वे कई बार कहा करते थे कि मुझे एकान्त मिल पाता है एक मात्र शौचालयमें, पर अब स्थिति सर्वथा दूसरी थी। अब एकान्तमें वे अपने भावराज्यमें रहते थे और इसपर भी यदि तनिक-सा अनुकूल उद्दीपन मिल जाय तो उनके अन्तरका भाव-सागर तुरन्त लहराने लगता था। यही बात मंगलवार सन् १९७९ के २० मार्चको हुई।

इन दिनों परिक्रमाके समय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी ही पदगान तथा नाम-कीर्तनकी सेवा करते थे। किसी कार्य-विशेषसे श्रीजोशीजी बाहर चले गये, अतः उपर्युक्त मंगलवारके दिन बहिन कमल और मुन्नीने परिक्रमाके समय पदगान और नाम-कीर्तन किया। उन्होंने पुष्टिमार्गके प्रवर्तक आद्याचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज द्वारा रचित मधुराष्टकको बड़े सुललित स्वरमें सुनाया। जब यह मधुराष्टक गाया जा रहा था, बाबाके लिये परिक्रमाके नियमको पूर्ण करना भी कठिन हो गया। उनकी आँखें रह-रह करके भर आती थीं और नासिका-द्वार अवरुद्ध हो जाते थे। वे बार-बार अपने उत्तरीयसे अपने नेत्र और अपनी नासिकाको पोंछ रहे थे। बाबाके नेत्रोंमें मोतियाबिन्द होनेसे उनकी नेत्र-दृष्टि कुछ धूमिल थी, किन्तु मधुराष्टकके गायनसे नेत्रोंमें जो सजलता परिव्याप्त हुई, इस सजलताने उस धूमिलताको और भी बढ़ा दिया। परिक्रमा लगाते समय पथका दिखलायी देना बन्द हो गया। बाबाको परिक्रमा पथपर आगे पैर रखनेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी।

इस भावोद्वेलनकी सीमा केवल परिक्रमातक ही नहीं रही। मधुराष्टकका गायन पूरा होकर नाम-संकीर्तन भी हो गया और गिरिराज-परिक्रमाका नियम भी पूर्ण हो गया, परन्तु बाबाका भाव-सागर उसी प्रकार उमड़ता-छलकता रहा। परिक्रमाके बाद उन्होंने टब-बाथ लिया, उस समय भी उनके कपोल बार-बार गीले हो रहे थे और उनके हाथकी रुमाल बार-बार उस गीलेपनको पोंछ रही थी। कपोलोंका गीला होना और उस गीलेपनको पोंछते रहना, इसका क्रम आज दिनभर चलता रहा। सारे दिन वे 'बाह्य धरातल' पर रहे ही नहीं, गहन गम्भीरता बनी रही।

* * * * *

खाँसी और पोस्ता

सन् १९७९ के अप्रैल मासकी बात है। इन दिनों बाबाको बहुत ज्यादा खाँसी थी। खाँसी इतनी ज्यादा था कि न दिनको चैन और न रातको आराम। हमलोग समझ नहीं पाते थे कि क्या उपचार किया जाय। बाबाकी सेवामें श्रीभगतजी, श्रीचोपड़ाजी, श्रीअमीचन्दजी आदि लोग थे, इन सेवापरायण लोगोंको सारी रात बैठे-बैठे बीत जाती थी। खाँसीसे बाबाका सारा पञ्जर हिल उठता था और ऐसा लगता था मानो आँतें बाहर आ जायेंगी। बाबाके भीषण कष्टको देखकर श्रीचोपड़ाजीने उनसे अनुरोध किया – बाबा! आपको खाँसी बहुत ज्यादा है। यदि आप अपने भिक्षामें पोस्ताका सेवन करें तो काफी आराम मिल सकता है।

बाबाने कहा – चोपड़ा प्रभु! पोस्तासे अफीम बनता है। जिसने संन्यास ले रखा है, उसके लिये यही उचित है कि गैरिक वस्त्रोंकी लज्जाको बचाये रखनेके लिये कभी पोस्ता स्वीकार न करे।

श्रीचोपड़ाजीने विनम्र स्वरमें निवेदन किया – बाबा! आपका कष्ट देखा नहीं जाता। आपके कष्टको देखकर मनमें बड़ी पीड़ा होती है। मैं आपको अफीम लेनेके लिये नहीं कह रहा हूँ। अफीम तो मानव द्वारा निर्मित वस्तु है। भले ही पोस्तासे उसका निर्माण होता है, पर पोस्ता तो एक प्राकृतिक स्वरूपमें प्रकृति प्रदत्त सहज वस्तु है। पोस्ताको अफीम नहीं कहा जा सकता, अतः पोस्ता लेनेमें किसी प्रकारकी हानि नहीं है।

पास बैठे हुए सभी लोग श्रीचोपड़ाजीको मन-ही-मन साधुवाद दे रहे थे और मन-ही-मन कह रहे थे कि बड़ी सुन्दर रीतिसे इन्होंने बाबाको समझानेका प्रयास किया है।

श्रीचोपड़ाजीकी बात सुनकर बाबाने दृढ़ता भरे स्वरोंमें कहा – खाँसीके कारण चाहे शरीरका अन्त ही हो जाय, परन्तु पोस्ता तो नहीं ही लूँगा।

श्रीचोपड़ाजी मन मारकर चुपचाप बैठ गये।

* * * * *

श्रीजज साहब का निधन

परमादरणीय श्रीजजसाहब (सम्माननीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) का निधन १५ मई १९७९ को हो गया। उनके निधनसे गीतावाटिकाकी एक विभूति तिरोहित हो गयी।

जजसाहबका जीवन एक सच्चे साधकका जीवन रहा। उनका कोमल हृदय, उनका संत स्वभाव, उनकी श्रद्धा भावना, यह सब हम सभीके लिये प्रेरणाकी वस्तु रही। इतना ही नहीं, सरकारी नौकरी करते समय भी जजसाहबका निर्मल-निर्दोष-निःस्वार्थ-निष्कलंक-निष्पक्ष कार्य सरकारी अधिकारियों द्वारा सदैव ही स्तुत्य रहा। विगत तीस-पैंतीस वर्षोंमें जजसाहबकी जैसी कहनी-करनी-रहनी रही, उससे स्पष्ट है कि बाबा और बाबूजी, इन युगल संतके अतिरिक्त उन्होंने किसी अन्यको न जाना और न माना। इन्हीं जजसाहबको मलद्वारके पास कैंसरका रोग हो गया। बाबाने ७ दिसम्बरको मौन लिया और मौनके १८ दिन बाद जजसाहबके शरीरमें २५ दिसम्बरको आपरेशन करके नवीन मल-मार्गका निर्माण कर दिया गया। स्थिति दिन-प्रति-दिन गिरती ही गयी। अपने परिवारवालोंके दबावमें आकर इन्हें १६ जनवरीको अपने घर प्रयाग चला जाना पड़ा। उनका शरीर अब कंकाल मात्र रह गया था। शय्यापर पड़े-पड़े कुछ दिन और निकल रहे थे। किसी भी क्षण जीवन-लीलाकी समाप्ति हो सकती थी।

मेरा अनुमान है कि जजसाहब जैसे समर्पित भक्तकी इन बातोंने अवश्य ही बाबाके अन्तरको प्रभावित किया होगा और उन्मुख बनाया होगा यत्किंचित् बहिर्मुखताकी ओर, जिससे कि जजसाहबके समाचारोंकी जानकारी हो सके। बहिर्मुखतासे मेरा तात्पर्य है – घेरेके भीतर बाबा अपने मनोभावोंकी

अभिव्यक्ति करते थे कभी संकेतके द्वारा, कभी अँगुलियोंसे लिखकर, कभी मुद्राके द्वारा, कभी अस्पष्ट और कभी स्पष्ट शब्दोच्चारके द्वारा। जो हो, घेरेकी सीमित परिधिके भीतर बाबा द्वारा भावाभिव्यक्ति होनेसे उन लोगोंको बड़ी सुविधा हो गयी, जो उनकी सेवामें संलग्न रहे। वे अब समझ सकते थे कि बाबाको कब क्या तथा किस प्रकारकी सेवा या उपचारकी आवश्यकता है। इन दिनों बाबाके मौन व्रतमें जो थोड़ी-बहुत शिथिलता दिखलाई दी, वह क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती ही चली गयी। उनका करुणा विगलित अन्तर अपने चरणाश्रित जनोंके लिये सदैव बहता ही रहता था।

बाबा-बाबूजीके प्रति समर्पित हो जानेके बाद जजसाहबने एक नियम ले रखा था – एक मासके भीतर एक बार अवश्य बाबा-बाबूजीका दर्शन करना। जबतक जजसाहब सरकारी नौकरीमें रहे, प्रत्येक मासमें एक बार बाबा-बाबूजीके दर्शनार्थ आते रहे, चाहे वे अथवा बाबा-बाबूजी भारतमें कहीं भी रहें। न्यायालयकी नौकरी करते हुए इस नियमके निर्वाहमें कभी भी व्यतिक्रम नहीं आया। बाबा-बाबूजीके दर्शनार्थ वे प्रत्येक मास पहुँच ही जाया करते थे।

न्यायाधीशके रूपमें एक बार उन्होंने एक हत्यापराधीको फाँसीकी सजा दे दी। बाबाको ज्यों ही पता चला, इसको बाबाने उचित नहीं बताया। किसीको हम जीवन नहीं दे सकते तो किसीका जीवन ले लेना कहाँतक उचित है? बाबाकी प्रेरणानुसार फिर भविष्यमें किसीको, हत्याके अभियुक्तको भी मृत्यु-दण्ड जजसाहबने दिया ही नहीं; हाँ, कानूनन ऐसे अभियुक्तको आजीवन कारावासका दण्ड देना अलग बात है।

* * *

जब जजसाहब मुजफ्फरनगरमें सन् १९५३ से १९५५ तक जिला न्यायाधीशके पदपर थे, इस अवधिके बीचका प्रसंग है। एक बार बाबा और बाबूजी दिल्लीसे ऋषिकेश जा रहे थे। मार्गमें मुजफ्फरनगर पड़ता था। बाबाको न जाने क्या सूझी, वे बाबूजीके सहित सीधे न्यायालयमें पहुँच गये जजसाहबसे मिलनेके लिये।

न्यायाधीशकी कुर्सीपर बैठे हुए जजसाहबने देखा कि बाबा-बाबूजी मेरे कमरेमें प्रवेश कर रहे हैं। उनको आते हुए देखकर जजसाहबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि बिना किसी पूर्व सूचनाके अचानक इनका शुभागमन कैसे हो गया! जजसाहब उसी समय अपनी कुर्सीसे उठे। न्यायालयकी परम्पराके अनुसार

न्यायाधीशके आने-जानेका मार्ग न्यायालयमें पीछेकी ओरसे होता है, सामनेसे नहीं, पर इस परम्पराकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए जजसाहब सामनेके मार्गसे नीचे उतरकर आये और न्यायाधीशका वेष धारण किये ही अभियुक्त-वकील आदि सबके सामने ही भूमिपर लोटकर बाबा-बाबूजीको साष्टांग प्रणिपात किया। यह देखकर बाबाका हृदय भर आया। बाबा कई बार जजसाहबकी श्रद्धा-भावनाकी सराहना करते थे।

२ मईके प्रातःकाल बाबाने यहाँ गीतावाटिकामें एक स्वप्न देखा कि भगवती गंगाका विस्तृत विशाल निर्मल प्रवाह मन्थर गतिसे बह रहा है। तट सुन्दर संगमरमरका बना हुआ है तथा उस सुन्दर तटपर कुछ दूर खड़े हुए जजसाहब बाबाकी ओर देख रहे हैं। जजसाहबके नेत्रोंमें समर्पणकी भावना है एवं कृपाकी याचना है। स्वप्न देखनेके बाद प्रातःकाल बाबाने कहा – जजसाहबका शरीर अब अधिक दिन नहीं रह पायेगा।

प्रयागसे टेलीफोनपर १५ मईको साढ़े नौ बजे बातचीत हुई ही थी। बातचीतके बाद जजसाहबकी मरणासन्न स्थितिका समाचार बाबाको तुरंत सुना दिया गया। सब हाल सुनकर बाबाने बहिन कमलके पास संदेश भिजवाया कि समाधिके पास बैठकर जजसाहबके लिये सवा घंटे श्रीहरिनामका संकीर्तन कर दो। उसी समय बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला)ने आकर बाबाको जजसाहबके निधनकी सूचना दी। जजसाहबका निधन दस बजे हुआ और निधन-सूचना टेलीफोन द्वारा गोरखपुर पाँच मिनटके भीतर-भीतर आ गयी थी। बाईके मुखसे इस शोक-संवादको सुनकर शोकार्त बाबाने कहा – जजसाहबके निधनसे मैं पंगु-सा हो गया।

थोड़ी देर मौन रहनेके बाद जजसाहबके सद्गुणोंकी चर्चा करते-करते बाबाने कहा – जजसाहबकी जैसी सुन्दर गति हुई है, उसे देखते हुए कुछ करने-करानेकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी उनके लिये सवा घंटा श्रीहरिनाम संकीर्तन समाधिपर हो ही रहा है।

* * * * *

रुग्ण होकर भी रुग्णातीत

बाबाके नियमोंकी मर्यादाओंको देखते हुए जितना संभव हो पाता था, बाह्योपचार किया जाता था। प्राकृतिक चिकित्सक श्रीहीरालालजी भी समय-समयपर गोरखपुर आ जाया करते थे और समयोचित परामर्श भी दे दिया करते थे। इससे लाभ ही होता था।

इस रुग्णताके बाद भी कभी-कभी कुछ ऐसे प्रसंग देखनेको मिल जाते थे कि जिनसे मन आह्लादित हो उठता था। नवम्बर १९७९ में एक दिन भाई भीमसेनजी चोपड़ाने 'विरहिणी राधा' नामक पुस्तिका पढ़कर बाबाको सुनायी। आदरणीय श्रीअवधविहारीलालजी कपूर द्वारा लिखित यह पुस्तिका श्रीकृष्ण-जन्म-भूमि, मथुरासे प्रकाशित है। अपनी कुटियाके एकान्त वातावरणमें इस पुस्तिकाको सुनते-सुनते बाबाकी तो विचित्र स्थिति हो गयी थी। कपोलोंपर बहती हुई अश्रु-धाराका विराम होता ही नहीं था। चोपड़ाजीने जब हमलोगोंको यह बताया तो हम सभी चकित रह गये।

अगला प्रसंग दिसम्बर १९७९ का है। नवद्वीपसे आयी हुई एक संकीर्तन मण्डलीने बाबाको 'पाला कीर्तन' सुनाया। पाला कीर्तन बंगालकी एक विशिष्ट गायन शैली है, जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्णकी और श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओंको गा-गा करके सुनाया जाता है। लगभग एक सप्ताहतक यह कार्यक्रम चला और २१-१२-७९ को समाप्त हुआ। बाबा कीर्तनके समक्ष लगातार तीन घंटेतक बैठे रहते और कीर्तनके सम्पन्न होनेके बाद भी बाबा प्रायः 'अन्यलोक'में ही रहते।

बाबाकी रुग्णताको देखकर हमलोगोंको कष्ट होता था, पर उनकी विचित्र रुग्णातीतावस्थाको देखकर विस्मय भी होता था। जब-जब ऐसे भावपूर्ण प्रसंग आते थे, तब-तब यही देखनेको मिलता था कि बाबा शरीरसे कितने असंपृक्त रहे।

* * * * *

प्रिय विष्णुकी तीर्थ-यात्रा

सन् १९८० ई.के अगस्त-सितम्बर मासमें श्रीधाम अयोध्याके आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी महाराजके नेतृत्वमें तीर्थ-यात्रा ट्रेन चली थी। श्रीजगन्नाथपुरी, श्रीरामेश्वरम्, श्रीद्वारका आदि मुख्य-मुख्य धामोंकी यात्रा

करनेमें लगभग दो मास लग गये थे। इस तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें गोरखपुरके प्रिय श्रीविष्णुप्रसादजी जालान भी अपनी धर्मपत्नीके साथ गये थे। सात्त्विकता-साधुता- सरलता-धार्मिकताकी दृष्टिसे प्रिय विष्णुका व्यक्तित्व सराहनीय हैं।

यात्रामें जानेके पहले प्रिय विष्णु बाबाके पास आशीर्वाद लेनेके लिये आया, जिससे तीर्थ-यात्रा सफलतापूर्वक सानन्द पूर्ण हो सके। बाबाने बड़े प्रसन्न मनसे अपनी अनुमति प्रदान की, परन्तु साथ ही यह भी कहा- क्या तुमने श्रीकृपाशंकरजी महाराजसे भी आज्ञा प्राप्त कर ली है?

प्रिय विष्णुने विनम्र रीतिसे निवेदन किया- मैं तो सर्वप्रथम आपके पास ही आया हूँ।

बाबाने प्यारपूर्वक कहा – उनके पास जाना, उन्हें प्रणाम करना और उनसे आज्ञा लेना तथा आशीर्वादके लिये विनती करना।

यह संयोगकी ही बात है कि उस समय पूज्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज गोरखपुरमें ही विराज रहे थे। प्रिय विष्णु उनके पास गया और उन्हें प्रणाम करके वह सारा वृत्त सुना दिया, जो बाबाके साथ हुआ था। यह सुनते ही श्रीकृपाशंकरजी महाराज गद्‌गद हो गये। वे भरे-भरे मनसे कहने लगे- पूज्य बाबा तो सर्वप्रकारसे समर्थ हैं, किन्तु अपने छोटे जनोंको सम्मान देना उनका स्वभाव है, इसीलिये मुझ तुच्छ व्यक्तिके प्रति आदर व्यक्त करते हुए उन्होंने तुमको मेरे पास भेजा है। तुम मेरे साथ तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें अवश्य चलो।

ऐसा कहकर और प्यारमें भरकर वे प्रिय विष्णुकी पीठपर हाथ फेरने लगे। प्रिय विष्णु उनके साथ तीर्थ-यात्रामें गया। उसकी तीर्थ-यात्रा पूर्ण हुई २ अक्टूबर १९८० के दिन। अगले दिन ३ अक्टूबरको अपराह्नकालमें वह अपनी धर्मपत्नी सहित गीतावाटिका आया बाबाको प्रणाम करनेके लिये। श्रद्धापूरित मनसे बार-बार प्रणाम करते हुए प्रिय विष्णुने कहा – बाबा! आपका ही कृपा-प्रसाद था कि यात्रा सुन्दर रीतिसे पूर्ण हुई। यह सारी यात्रा बाधा-रहित रीतिसे इतनी सुन्दर रही कि उसका वर्णन सम्भव नहीं। न कहीं धूप-वर्षाका सामना करना पड़ा और न कहीं तबीयत खराब हुई। यात्रामें आगे-से-आगे ऐसी-ऐसी अनुकूलता मिलती चली गयी कि सभी स्थानोंपर दर्शन ठीक प्रकारसे मिलते गये। मुझे आशा नहीं थी कि ब्रज-यात्राके समय बरसानेमें श्रीराधाष्टमीका उत्सव देखनेको मिलेगा, पर वह भी सौभाग्य सुलभ हुआ।

बाबा उसकी यात्राका वर्णन सुनते भी जा रहे थे और बीच-बीचमें उसके स्वभावकी सात्त्विकता, हृदयकी निर्मलता, अन्तरकी आस्तिकता और भावोंकी उर्मिलताकी सराहना भी करते जा रहे थे। उसकी धर्मपत्नीको बार-बार बेटी कह-कह करके बाबा उसकी कोमलता और उसकी सरलताकी प्रशंसा कर रहे थे। बाबाने प्रिय विष्णुसे कहा – तुमने जगह-जगहसे जो पत्र पोष्ट किये थे, वे सारे पत्र मुझे मिल गये थे।

बात यह थी कि प्रिय विष्णुने इस यात्राके बीच मुख्य-मुख्य तीर्थ-स्थानोंसे बाबाके पास पत्र लिखे थे और उन पत्रोंका विषय था बाबाके प्रति प्रणामका निवेदन, कृपाकी याचना तथा कृतज्ञताकी अभिव्यक्ति। उन पत्रोंकी पंक्ति-पंक्तिमें उसका हृदय बोल रहा था कि इस सुखद और सफल यात्राका सारा श्रेय बाबाकी अहैतुकी कृपाको है। इन पत्रोंके सम्बन्धमें ही चर्चा करते हुए बाबा प्रिय श्रीविष्णुसे कहने लगे – जगह-जगहसे भेजे गये तुम्हारे जितने भी पत्र मेरे पास आये, उन सब पत्रोंको मैं अपने सिरहाने तकियेके नीचे रखता था। केवल कुछ क्षणोंके लिये नहीं, बल्कि तीन दिनतक रखता था। अपने महज्जनोंने तथा शास्त्रोंने तीर्थ-यात्रीके लिये एक विशेष निर्देश दे रखा है कि यात्रीको तीर्थमें तीन दिन और तीन राततक वास करना चाहिये। मैं जानता था कि तुम ट्रेनमें यात्रा कर रहे हो, अतः निर्दिष्ट विधानके अनुसार तीन दिन और तीन रातकी अवधिके लिये किसी तीर्थमें वास करना तुम्हारे लिये सम्भव नहीं है। तुम्हारे लिये यह एक विवशता थी। अब अपने तकियेके नीचे उन पत्रोंको तीन दिन और तीन रात रख करके मैं यह मान लेता था कि तुमने उस निर्दिष्ट विधानका पालन कर लिया और तीन दिनके वासके बाद तुमने अगले तीर्थके लिये प्रस्थान कर दिया है। यही कारण था कि तुम्हारे पत्रोंको मैं सिरहाने तीन दिनतक रखता था और फिर उनको विसर्जित कर दिया करता था।

बाबाकी प्यारसे सनी इन बातोंको सुनकर तथा जिस तरहसे बाबाने उन पत्रोंको सम्मान दिया, उनके इस प्रेमिल स्वभावको देखकर प्रिय विष्णुका अन्तर बड़ा विह्वल हो रहा था। बाबाके पास प्रिय विष्णु लगभग एक घण्टा रहा। बातचीतके मध्य बाबाने उसे यह भी बताया कि तीर्थ-यात्रासे लौटे हो, अतः ब्राह्मण-भोजन अवश्य करा देना। इस संकेतको तो प्रिय विष्णुने आदेशवत् ही स्वीकार किया।

* * * * *

श्रीगिरिराज परिक्रमा

प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९८० ई. में भी भाद्र शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिसे लेकर त्रयोदशी तिथितक श्रीराधाष्टमी-महोत्सव उत्साहके साथ मनाया गया, जिसमें अष्टमी और नौमी तिथियाँ मुख्य थीं ही। हम लोगोंकी आँखोंके सामने उत्सवका आयोजन रहा षष्ठीसे लेकर त्रयोदशीतक और उस अवधिमें भी जितनी देरतक कोई कार्यक्रम चलता रहा, बस उतनी देरतकके लिये ही, किन्तु बाबाके भावराज्यकी तो बात ही दूसरी थी। उनके भावराज्यके अनुसार तो श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका शुभारम्भ भाद्र मासके शुक्ल पक्षको प्रतिपदा तिथिसे ही पन्द्रह दिनके लिये हो जाता है, जब नन्दग्रामसे यशोदा मैया तथा नन्दबाबा बरसाने पधारते हैं श्रीवृषभानुनन्दिनीका जन्मोत्सव मनानेके लिये। भले ही हम लोगोंके चर्म-चक्षुओंको वह दिव्य उत्सवोल्लास दिखलायी न दे, पर बाबा तो प्रतिपदा तिथिसे उसी उत्सवमें संलग्न रहते हैं और उसी उल्लासमें निमग्न रहते हैं। अवश्य ही, बाबाकी उस संलग्नताको और उस निमग्नताको हम 'दृष्टि-विहीन' लोग देख नहीं पाते। देखना तो दूर रहा, उसका आभासतक हम लोगोंको नहीं मिल पाता। यदि कभी आत्मीयतावशात् बाबा हम लोगोंको कुछ बतलाते भी थे तो उसे हम लोग हृदयंगम नहीं कर पाते थे। बस, उत्सवायोजनके रूपमें षष्ठीसे त्रयोदशीतक जो दृश्य इन चर्म-चक्षुओंको दिखलायी देते थे तथा जो शब्द इन कर्ण-कुहरोंमें पड़ते थे, केवल उतना ही हम लोग देख-सुन-समझ पाते थे।

श्रीललिता षष्ठी १५ सितम्बर सोमवारको थी तथा श्रीराधाष्टमी १७ सितम्बर बुधवारको। जतीपुरासे श्रीहरिवल्लभजी १३ सितम्बर शनिवारकी शामको यहाँ पहुँचे तथा श्रीमहाराजजी अपने परिकर सहित १४ सितम्बर रविवारके प्रातःकाल गीतावाटिका पधारे। मोटरकारसे उतरकर महाराजजी सीधे बाबाकी कुटियाकी ओर शीघ्रतासे बढ़ने लगे। बाबाने उनको आते हुए देख लिया। बाबा भी अपनी शिथिल गतिसे उनकी ओर अग्रसर हुए। बाबा अब लकवा-ग्रस्त नहीं थे, पर वह रोग अपना प्रभाव शरीरपर किसी अंशमें छोड़ ही गया था। उस प्रभावके कारण बाबाकी गतिमें वह त्वरा नहीं रह गयी, जो कभी पहले थी, फिर भी जितना सम्भव

था, बाबा अपने पदोंको जल्दी-जल्दी उठाते-रखते हुए महाराजजीकी ओर अग्रसर हो रहे थे। मार्गके बीचमें ही हुआ सम्मिलन। इसे सम्मिलन कहा जाये अथवा स्नेह-द्वन्द्व? महाराजजी चाहते थे और उनकी चेष्टा थी कि बाबाके चरणोंको स्पर्श कर लूँ, पर यह भला क्या बाबा होने देते? महाराजजीके दोनों कर-पल्लवोंको बाबाने अपने कर-पल्लवोंसे पकड़ लिया और उनके हाथोंको अपने हाथोंमें थामे हुए ही वहीं भूमिपर बैठ गये। महाराजजीकी आँखें मुँद गयीं, पर हमलोग खुली आँखोंसे देख रहे थे कि महाराजजी न जाने कहाँसे कहाँ बहे चले जा रहे थे। सचमुच, वे अपने आँसुओंके साथ बहे चले जा रहे थे। यह तो अच्छा हुआ कि बाबाने उनका हाथ अपने हाथमें थाम रखा था, अन्यथा वे न जाने कहाँ डूब जाते। वातावरण गम्भीर रूपसे प्रशान्त था। महाराजजीको बहिर्मुख करनेके लिये बाबाने विविध प्रकारके कुशल-प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। महाराजजी जब कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो उनसे बाबाने कहा – मैं एक अपराध कर रहा हूँ। मैं बार-बार इधर-उधरकी बातें कह-कह करके आपके भाव-प्रवाहमें बाधा डाल रहा हूँ। भावके गहरे आवर्त कहीं गम्भीर रूपसे उपस्थित न हो जावें, इसीलिये यह अपराध कर रहा हूँ, अन्यथा होता यह कि भावके गम्भीर प्रवाहमें आप मुझे देखते रहते और मैं आपको देखता रहता। हम दोनों न जाने किन-किन उर्मिल भाव-लहरियोंमें डूबते-उतराते रहते। फिर होता यह कि ये उपस्थित जन चुपचाप खड़े रहते तथा मौन नेत्रोंसे हमें निहारते रहते। इन उपस्थित जनोंके सुखके लिये ही आपके भाव-प्रवाहमें बाधा डालकर वातावरणको हलका बनाये हुए हूँ। आपको बहिर्मुख बनाये रखनेका अपराध मेरे द्वारा अवश्य हो रहा है, पर यह क्रिया सोद्देश्य ही है।

थोड़ी देर रुककर पुनः महाराजजीसे बाबाने कहा – ऐसा दिन कदाचित् ही हुआ हो, जब मैं आपको स्मरण नहीं करता होऊँ। व्रजके दो संतोंकी स्मृति मुझे सदा ही बनी रहती है, एक आपकी और दूसरे पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराजकी।

पासमें हरिवल्लभजी बैठे हुए थे। तुरन्त उनकी ओर उन्मुख होकर बाबाने कहा – दादा! तुमने यह तो बताया ही नहीं कि क्या यहाँ आनेसे पहले पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराजसे मिलकर आये हो या नहीं?

हरिवल्लभजी द्वारा 'हाँ' कहे जानेपर बाबाने फिर पूछा – क्यों, वे

सानन्द हैं न?

पुनः हरिवल्लभजीसे 'हाँ' का उत्तर मिलनेपर बाबाने हरिवल्लभजीसे कहा – दादा! तुम पण्डितजीसे मिलकर आये हो, अतः अपना हाथ मेरे मस्तकपर रख दो।

ऐसा कहकर बाबाने चाहा कि हरिवल्लभजीका हाथ अपने मस्तकपर रख लूँ, किन्तु विनयाधिक्यसे हरिवल्लभजीने अपना हाथ संकुचित कर लिया। फिर प्यारमें भरकर बाबा महाराजजीसे बोले – जब मेरा सौभाग्य, परम सौभाग्य उदित होता है, तब आपका यहाँ शुभागमन होता है। दो बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। हरिवल्लभजी जब यहाँ आते हैं तो व्रजभूमिके संगीताचार्यका पद यहाँ विराजित हो जाता है और जब आप यहाँ पधारते हैं तो व्रज-मण्डलका संत-समाज यहाँ मूर्तिमान हो उठता है।

भाव-मग्न महाराजजी रस-सिक्त स्वरमें इतना ही कह पाये – आपकी उपस्थितिसे दुर्लभ दर्शन भी सहज सुलभ हैं। बस, आप सदा-सर्वदा इसी प्रकारसे दर्शन देते रहें।

थोड़ी देर बाद ही बाबाकी परिक्रमाका समय हो गया। इन दिनों प्रतिदिन ही परिक्रमा-पथका तथा श्रीगिरिराजजीका पुष्पोंसे सुन्दर शृंगार होता। वाटिकाकी श्रद्धालु बहिनें ही परस्परमें हिल-मिल करके इस शृंगार-सेवाको सम्पन्न करती थीं। ऐसा लगता मानो उन बहिनोंका श्रद्धा-पूरित सुन्दर मन ही सुमनोंके रूपमें श्रीगिरिराजजीकी शोभा बढ़ा रहा है और परिक्रमा-पथका सुन्दर आच्छादन बना हुआ है। महाराजजीने पधार करके परिक्रमा-स्थलीमें अपना स्थान ग्रहण कर लिया। श्रीराधाष्टमी महोत्सवके कारण अनेक भक्तगण दूर-दूर स्थानोंसे आये हुए थे। समाधि-परिसर इन भक्तोंसे भरा हुआ था। भीड़ थी, पर साथ ही पूर्ण शान्ति भी थी। परिक्रमाके लिये बाबाने परिक्रमा-स्थलीमें प्रवेश किया। बाबाने खड़े-खड़े श्रीगिरिराजजीकी वन्दना की और तदुपरान्त आरम्भ कर दी उन्होंने परिक्रमा। हरिवल्लभजी महाराजजीके पार्श्वमें बैठे हुए अपने सुमधुर कण्ठसे पद-गान कर रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते जब भी बाबा हरिवल्लभजीके पास आते, वे श्रीहरिवल्लभजीके साथ-साथ आलापचारी करते तथा उनके स्वरमें स्वर मिलाते। यह बात केवल एक बारकी नहीं, अपितु बार-बारकी बात थी कि परिक्रमा लगाते-लगाते बाबा ज्यों ही

हरिवल्लभजीके सामने आते, त्यों ही बाबा उनके साथ-साथ गायन करने लगते। पिछले दिनों बाबा प्रतिदिन ही मौन रहते हुए चुपचाप परिक्रमा लगाया करते थे, पर आज तो बहुत ही प्रसन्न वदन और बहुत ही बहिर्मुख हैं। आज बाबा बड़ी उमंगमें हैं, अपितु बहुत ही बह रहे हैं। वे गा रहे हैं श्रीहरिवल्लभजीके साथ-साथ, परंतु वस्तुतः सच बात यह है कि वे आमोदित-आह्लादित करना चाह रहे हैं समीपस्थ महाराजजीको। हरिवल्लभजीके साथ उमंग भरे मनसे बाबाको गाते हुए देखकर मुझे तो रसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजका एक पद मन-ही-मन स्फुरित होने लगा – 'नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत।' जो परिक्रमा प्रतिदिन आधा घण्टामें पूर्ण हुआ करती थी, आज उसमें डेढ़ घण्टेसे भी अधिक लग गया।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बाद भी, जबतक महाराजजी गीतावाटिकामें विराजित रहे, परिक्रमाका यह उमंगोल्लास सदा बना रहा। हरिवल्लभजीका समयोचित गायन परिक्रमाके राग-रंगको और भी गहरा बना देता। परिक्रमाके समय कई बार ऐसा होता कि महाराजजी बाबाको कभी पुष्प-माला पहनाते और कभी उनके कर-पल्लवपर पाटल-पुष्प रखते और कभी दोनों करते। एक बार महाराजजी जब पुष्प-माला पहना रहे थे, तभी गाये जाते हुए पदको रोककर, बीचमें ही हरिवल्लभजीने एक नवीन पद गाना आरम्भ कर दिया – 'ऐसे ही देखत रहौं, जनम सुफल करि मानौं'।

महाराजजी जिस पुष्प-मालाको पहनाते, उस पुष्प-मालासे लटकते सुमेरुको बाबा अपने वक्षःस्थलसे लगाते, अपने मस्तकसे लगाते और अपने नेत्रोंसे लगाते। इसके बाद बाबा उस पुष्प-मालाको अपने गलेमेंसे उतारकर अपने दाहिने हाथकी कलाईमें वलयाकार लपेट लेते। एक अन्य दिवसकी घटना है। अपने गलेसे पुष्प-मालाको उतारकर ज्यों ही बाबाने अपनी कलाईमें वलयाकार लपेटा, त्यों ही उनके शरीरातीत- लोकातीत-त्रिगुणातीत महाशुद्धसत्त्वमय दिव्य स्वरूपकी स्मृतिसे भावित हुए हरिवल्लभजी गा पड़े –

बनी री तेरे चारि चारि चूरी करनि।
कंठसिरी दुलरी हीरनि की नासा मुक्ता ढरनि।।

एक दिन महाराजजी बाबाको पाटल-पुष्प प्रदान कर रहे थे, उस समय उनकी भावमयी मुद्राको देखकर हरिवल्लभजी गाने लगे –

चतुर कछु नैननि में बतरात।
वृन्दावन हित रूप रसिक पिय यह छबि हिय न समात।।

हरिवल्लभजी जिन पंक्तियोंको गाते, प्रसंगानुरोधसे उनमें अर्थ-गाम्भीर्य रहता। पदकी पंक्तिका अर्थ कुछ और होता था और उस अर्थका भी अर्थ कुछ और ही होता था तथा इस और-ही-औरमें एक लोकोत्तर स्तरके भावोच्छलनकी अद्‌भुत सृष्टि हो जाती थी। इस प्रकारके रसमय प्रसंग नित्य ही देखने-सुननेको मिल जाते थे।

ऐसे तो कई मधुर प्रसंग ध्यानमें आ रहे हैं, उनमेंसे परिक्रमाके एक और प्रसंगको लिखनेकी भावना बार-बार उभर रही है। एक दिन, सम्भवतः आश्विन कृष्ण एकादशीको परिक्रमामें हरिवल्लभजीने दानलीलाका प्रसंग छेड़ दिया और श्रीरसिकरायजू द्वारा रचित 'गोबरधनकी सिखर तें मोहन दीनी है टेर', इस लम्बे पदको वे गाने लगे। इस पदमें वर्णित लीला बाबाके लिये बहुत अधिक भावोद्दीपनका कार्य करती थी। उद्दीप्त भावोंकी प्रबलताके कारण बाबा आज बहुत गम्भीर हैं। आज बाबा यन्त्रवत् परिक्रमा-पथपर चल रहे हैं। बाबाकी मुखाकृति बतला रही है कि आज वे गहरे रूपसे अन्तर्मुख हैं। परिक्रमा-नियमके पूर्ण होनेपर बाबा अपनी कुटियापर गये। साथमें थे ठाकुरजी भी।

भावके किञ्चित् शमित होनेपर ठाकुरजीसे बाबाने कहा – इस पदमें जो-जो वर्णित हुआ है, उसे श्रीरसिकरायजीने प्रत्यक्ष देखकर लिखा है। वे स्वयं ही पदके अन्तमें कहते हैं 'निरखत लीला रसिक जू जहाँ दान मानकी ठौर'। व्रजभूमिके इन प्रत्यक्ष-लीला-दर्शी संतोंकी कितनी कृपा है कि जो इन अचिन्त्य-अगम्य लीलाओंको सरल रीतिसे वर्णन करके हम लोगोंको सहज-सुलभ करा रहे हैं।

* * * * *

स्व-दृष्ट पूतनालीला का वर्णन

ठाकुरजीसे भगवल्लीलाकी अचिन्त्यता-अगम्यताकी बात चल रही थी। बाबा अपनी एक स्व-दृष्ट लीलाका वर्णन करते हुए कहने लगे – बड़ी सरस और बड़ी मधुर लीलाओंकी बात एक बार एक किनारे रख दो, पूतना-लीलाकी ही बात लो। पूतना-लीलाको लीला-चिन्तनकी दृष्टिसे प्रायः

कोई वरेण्य नहीं मानता, परंतु किसी अकारण कृपाके फलस्वरूप मेरे समक्ष पूतना-लीला जिस प्रकारसे आविर्भूत हुई, उसका वर्णन किस प्रकार करूँ? जब निशाचरी पूतना नीलसुन्दर शिशुको अपने वक्षःस्थलपर लिये-लिये उड़ चली, उस समय गोपियोंमें हाहाकार मच गया, सब एक साथ चीत्कार कर पड़ीं। यशोदा मैया तो तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। पूतनाके साथ-साथ गोपियाँ दौड़ पड़ीं। एक नहीं, दौड़ पड़ीं सब-की-सब। पूतना उड़ रही थी ऊपर आकाशमें और गोपियाँ दौड़ रही थीं नीचे पृथ्वीपर। गोपियोंकी दृष्टि पथपर नहीं, नभमें थी, नभमें पूतनाके वक्षःस्थलसे चिपके हुए नीलसुन्दर शिशुपर। क्या आकाशकी ओर दृष्टि होनेसे दौड़ती हुई गोपियाँ नन्दग्रामके भवनोंसे टकरा गयीं? क्या वनकी लताओंने-वृक्षोंने गोपियोंके मार्गमें अवरोध उपस्थित किया? नहीं, कदापि नहीं। वे भवन, वे विटप, वे वल्लरियाँ जड़ थोड़े ही हैं। श्रीकृष्ण-लीलामें सहयोग देनेके लिये उन सबने जड़ावरण वरण कर रखा है। वहाँके जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, वहाँकी सम्पूर्ण प्रकृति चिन्मय है। उन सबने स्वतः ही दौड़ती-भागती सभी गोपियोंको अवकाश दे दिया, मार्ग दे दिया। मार्गमें किसी प्रकारका अवरोध उपस्थित न होने पाये, एतदर्थ वे सभी यथावश्यकता सिमट गये, संकुचित हो गये, सीधे हो गये। यही बात कालको लेकर है। यह कभी सम्भव ही नहीं कि यातुधानी पूतनाके उड़नेकी गतिकी समान गतिसे गोपियाँ दौड़ सकें। तुरन्त काल भी संकुचित हो गया और पूतनाके गिरनेके साथ-साथ ही गोपियाँ वहाँ पहुँच गयीं। और वह सलोना शिशु भी कितना भाव-ग्राही है! सभी-की-सभी गोपियोंकी भीषण अन्तर्वेदनाको उसने अनुभव किया। किसी एकने नहीं, सारी गोपियोंने अलग-अलग यही अनुभव किया कि पूतनाके वक्षःस्थलसे लालाको मैंने ही उठाया है और मैंने ही लाकर मूर्च्छित यशोदाकी गोदमें दिया है, जिससे यशोदाके कण्ठगत प्राणोंकी रक्षा हो सकी। वहाँके चिन्मय भवनोंकी, वनोंकी, वीथियोंकी, वृक्षोंकी, वल्लरियोंकी, वामाङ्गनाओंकी मति-रति-गति हम साधारण जनोंके लिये अगम्य है, अचिन्त्य है, अकल्पनीय है।

* * * * *

सन्निपात का प्रकोप

बाबाको तो अपने शरीरका ध्यान रहता ही नहीं। पर-दुःखकातरता इतनी थी कि अपने शरीरका मूल्य देकर भी आगत जनोंके दुःख-दर्दको सुनना चाहते थे तथा उस दुःख-दर्दको दूर करना चाहते थे। शीत ऋतु होनेसे परिक्रमा प्रातःकाल साढ़े आठ बजेसे पौने नौ बजेतक हुआ करती थी। शुक्रवार ११-१-८० के प्रातः परिक्रमा लगाकर जब बाबा अपनी कुटियापर पहुँचे, उसके थोड़ी देर बाद ही लोग मिलनेके लिये पहुँच गये। कुटियाके चारों ओर पर्याप्त स्थान छोड़ करके एक घेरा बना हुआ था। उस घेरेके द्वारपर बाबा बैठ गये तथा लोगोंसे मिलने लगे। एकके बाद दूसरेसे, दूसरेके बाद तीसरेसे, इस प्रकार बाबा मिले, पर आजका यह मिलना प्राणघाती हो गया। पेड़के नीचे धूपका अभाव, घोर शीत तथा रह-रह करके बाबाके शरीरपरसे वस्त्रोंका सरक जाना; बस, बाबाको भीषण रूपसे सर्दी लग गयी। इसके बाद फिर नग्न शरीरसे शौच गये। वहाँ शरीरमें इतनी अधिक कँपकँपी थी कि प्रक्षालनार्थ शौचालयके पात्रको पकड़ सकना भी सम्भव नहीं हो सका। यह कल्पना किसीको भी नहीं थी कि उनके फेफड़े बहुत ही अधिक कफाक्रान्त हो चुके हैं। इसी क्रममें प्रतिदिनके अभ्यासके अनुसार बाबाने टब-बाथ ले लिया। टब-बाथ क्या लिया, रही-सही 'कमी' भी पूरी हो गयी और बाबा बेहोशीकी स्थितिमें हो गये। टब-बाथके बाद बाबा भिक्षा किया करते थे, पर अब भिक्षा क्या होती ?

बाबाको तुरन्त लिटा दिया गया। रातको बाबा जब कुछ असम्बद्ध बोलने लगे, तब प्रातःकाल अनुमान हुआ कि सम्भवतः बाबाको सन्निपात हो गया है। तुरन्त डाक्टरको बुलाया गया। डाक्टरने देखते ही कहा – स्थिति सांघातिक है। मैं तुरन्त इंजेक्शन देना चाहता हूँ, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि आप लोग बाबाको खो दें।

परस्परमें विचार-विनिमयके बाद यही तय किया गया कि ऐलोपैथिक दवा बाबाने कभी नहीं ली, अतः इंजेक्शन नहीं देना चाहिये। हाँ, आयुर्वेदिक औषधि अवश्य देनी चाहिये। नगरके श्रेष्ठ वैद्यराज श्रीश्रीपतिजीको बुलाकर आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ हो गयी। नगरके तथा मेडिकल कालेजके अनेक डाक्टर बिना बुलाये ही प्रीतिवशात् आ-आ करके बाबाको देखने लग गये। सभी बार-बार स्थितिकी गम्भीरताकी ओर संकेत कर रहे थे। डा. एल. डी. सिंह

तथा डा.एम.एन.शर्मा तो निरन्तर बाबाकी सेवामें लगे रहे। इनकी सेवाकी सराहनाके लिये शब्द नहीं।

११-१-८० शुक्रवारके अपराह्न कालसे शनिवारके सूर्यास्ततक स्थिति बड़ी गम्भीर रही। एक बार तो बाबाकी नेत्र-पुतली स्थिर हो गयी थी। यह देखकर हम सभी लोग काँप उठे। शनिवारकी संध्याके समय लगभग सात बजे बाबाको थोड़ी चेतनता हुई। इससे हम सभी लोगोंको कुछ धीरज बँधा। रातमें बाबाको थोड़ी नींद आयी। प्रातः बाबा बड़े प्रसन्न रहे। पहले जो ज्वर १०५ डिग्री था, वह रविवारको १०२ डिग्री और सोमवारको प्रातः १०० डिग्री रहा। औषधिने काम किया। स्थिति अब पूर्णतः सुधारकी ओर थी।

११-१-८० शुक्रवारको तो प्रातः परिक्रमा हो गयी थी। शनिवारको तथा रविवारको अपराह्न कालमें आराम कुर्सीपर लिटाकर बाबाको परिक्रमा हेतु गिरिराज-परिसरमें लाया गया। उनके चरणोंका भूमिसे स्पर्श करा दिया गया। इसके बाद कुर्सीपर लिटाये-लिटाये एक परिक्रमा करा करके बाबाको वापस कुटियापर ले जाया गया।

* * * * *

श्रीरामचरितमानस का प्रतिपाद्य

सन् १९८० के मध्यकी बात होनी चाहिये। सूर्यास्त हो चुका था। बाबा स्नान करके भिक्षा करनेके लिये अपने आसनपर विराज चुके थे। पत्तलमें भिक्षाके परोसनेकी तैयारी हो रही थी। उस समय लगभग दस-पन्द्रह व्यक्ति बाबाके पास बैठे हुए थे। उनके शान्त और प्रसन्न मुख मण्डलको देखकर एक व्यक्तिने हाथ जोड़कर निवेदन किया – बाबा! मेरे मनमें एक जिज्ञासा है।

बाबाने कहा – पूछिये, क्या जानना चाहते हैं?

उन सज्जनने कहा – बाबा! तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य तथ्य क्या है?

इस प्रश्नको सुनकर बाबा थोड़े चौंके। प्रश्न तो जटिल अवश्य था, किन्तु था बहुत सुन्दर। प्रश्नकर्ताका परिचय प्राप्त करनेकी भावनासे बाबाने पूछा – आपका परिचय क्या है, आप क्या करते हैं?

उन सज्जनने हाथ जोड़े हुए विनम्रता पूर्वक कहा – मैं इलाहाबादका रहनेवाला हूँ और श्रीरामचरितमानसकी कथा कहा करता हूँ।

वे आगे कुछ बोलें, उनको रोककर बीचमें ही बाबा बोल पड़े – यह तो बड़ी अटपटी बात है। श्रीरामचरितमानसकी कथा कहनेवाले पण्डितजीको मानसके प्रतिपाद्यका ज्ञान नहीं हो, यह बात समझमें नहीं आती!

उन कथावाचकजीने कहा – यह बात आपकी या किसीकी समझमें भले न आये, पर सचमुच मेरे मनमें यह प्रश्न बहुत दिनोंसे बना हुआ है।

बाबाने एकदम सीधा प्रश्न किया – जैसे अन्य कई कथावाचक अपने पाण्डित्यका प्रदर्शन करनेके लिये कुछ प्रश्न करते हैं, कुछ कुरेदते हैं, कुछ कहते हैं, क्या आप भी वही कर रहे हैं?

कथावाचकजीने पुनः कहा – बाबा! सचमुच मैं वह प्रतिपाद्य जानना चाहता हूँ, इसीलिये ऐसा प्रश्न किया है।

बाबा तो उनके मनकी भीतरी बात जानना चाहते थे, अतः उन्होंने फिर पूछा – क्या आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं?

कथावाचकजीने कहा – परीक्षा नहीं, शिक्षा लेने आया हूँ।

बाबाने पुनः उलटकर तीखे स्वरमें प्रश्न किया – क्या आप मेरी वंचना कर रहे हैं?

उन कथावाचकजीने विनम्रता पूर्वक कहा – मैं एक साधारण ब्राह्मण हूँ। मानसकी कथा कहकर अपने परिवारका भरण-पोषण करता हूँ। अब आप सोचें कि क्या कथा कहनेवाला एक साधारण ब्राह्मण किसी तपस्वी संन्यासीकी वंचना करनेका साहस कर सकता है? यदि मुझे वंचना ही करनी थी तो मैं किसी अन्यकी करता। आपकी वंचना करके मुझे कहाँ ठहरनेकी ठौर मिल पायेगी? क्या मैं आपकी वंचना करनेकी बात कभी सोच सकता हूँ? मैंने आपकी कीर्ति सुनी है। आपके संतत्वपर मेरा पूरा विश्वास है। मुझे मेरी जिज्ञासाका सही-सही समाधान मिलेगा, यह आशा लेकर मैं आपके श्रीचरणोंके समीप आया हूँ। आप विश्वास करें, मैं आपकी न वंचना करने आया हूँ और न परीक्षा लेने आया हूँ, अपितु मैं अपना वह प्रश्न आपके समक्ष रख रहा हूँ, जिसका उत्तर मुझे कहीं मिल नहीं पाया है। मेरे साथ तो दीपक तले अँधेरावाली उक्ति चरितार्थ हो रही है।

उन कथावाचकजीके सरल और सत्य निवेदनसे बाबा द्रवित हो उठे। सच्चे और सरल प्रश्नका संत सदैव स्वागत किया करते हैं। बाबाने कहा – सर्वप्रथम, आपकी सच्चाईकी मैं हृदयसे जय-जयकार मनाता हूँ। अब जो भी समझमें आ रहा है, उसे बतलानेका प्रयास कर रहा हूँ। यह बात सिद्धान्ततः सही है कि मरते समय व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। अन्तिम क्षणोंमें उसके भीतर

सत्यके लिये आग्रह रहता है। अब गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके श्रीरामचरितमानसके अन्तिम काण्ड अर्थात् उत्तरकाण्डके एकदम अन्तिम अंशको देखें। उत्तरकाण्डके एकदम अन्तमें गोस्वामीजीने तीन कवित्त लिखे हैं। इन तीन कवित्तोंके बाद उन्होंने दो दोहे लिखे हैं –

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु विषम भव भीर।।
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

इन दो दोहोंमें श्रीगोस्वामीजीने अपने जीवनाराध्य भगवान श्रीसीतारामजीसे अपनी आन्तरिक प्रार्थना और वास्तविक कामनाका निवेदन किया है। वह आराध्य और आराधकके मध्य होनेवाले व्यक्तिगत और आन्तरिक सम्बन्धकी बात है। इन दो दोहोंमें गोस्वामीजीने अपनी निजी भावनाका उल्लेख किया है। इन दो दोहोंसे पहले जो तीन कवित्त लिखे गये हैं, उनमें तीन बातें कही गयी हैं।

प्रथम कवित्त है –

पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।।

इस प्रथम कवित्तमें भगवानके नामकी महिमा बतलायी गयी है। जिसने भी भगवन्नामका आश्रय लिया, चाहे वह कोई हो और कैसा भी हो, उसकी सारी बात बन गयी और उसके लोक-परलोक-परमार्थ सभी सुधर गये। भगवन्नामके आश्रयसे नितान्त पतित भी परम पावन हो जाता है।

अब दूसरा कवित्त है –

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै।।

इस दूसरे कवित्तमें भगवानके चरित्रकी महिमा बतलायी गयी

है। जो मनुष्य भगवानकी लीलाका कथन-श्रवण-गायन करते हैं, उनके मनकी सारी मलिनता दूर हो जाती है, पाँचों प्रकारकी अविद्याके विकार नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें उसे भगवानके परम धामकी प्राप्ति होती है। तीसरा कवित्त है –

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

इस तीसरे कवित्तमें भगवानकी कृपाकी महिमा बतलायी गयी है। दयासिंधु भगवानकी अनाथोंपर बड़ी प्रीति होती है। उन कृपा-मूर्ति भगवानकी कृपाके बिंदु मात्रसे संसार-सिंधु ही सूख जाता है और मुक्ति सहज सुलभ हो जाती है। उन सदा निष्काम और पूर्ण कृपाधामकी कृपाका आश्रय लेनेसे परम विश्राम मिलता है।

बाबा बड़े प्यार भरे शब्दोंमें उन कथावाचकजी महाराजको मानसका मर्म बतलाते जा रहे थे। बाबाने कहा – प्रथम कवित्तमें भगवन्नाम, दूसरे कवित्तमें भगवल्लीला और तीसरे कवित्तमें भगवत्कृपाकी महिमाका वर्णन है। बस, यही भगवन्नाम, भगवल्लीला और भगवत्कृपा ही श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य है और विभिन्न रीतिसे इन तीनोंकी महिमाका बखान करते हुए मानसमें यही कहा गया है कि इनका आश्रय लेनेसे मानव-जीवनको पूर्ण सफल और पूर्ण सुन्दर बनाया जा सकता है। मानसके सभी पात्र, चाहे वे सुन्दर हों या असुन्दर, निकृष्ट हों या उत्कृष्ट, सभी इसी तथ्यका अपनी क्रियाओंसे परिपोषण करते हैं। श्रीरामचरितमानसके सारे पात्रोंका, सभी संवादोंका और आद्यन्त कथाप्रवाहका एक मात्र यही संदेश है कि भगवन्नाम-भगवल्लीला-भगवत्कृपा, इन तीनोंके आश्रयसे जीवनमें ऊँची-से-ऊँची वस्तुकी प्राप्ति सहज सम्भव है और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ आध्यात्मिक स्थितिकी भी उपलब्धि हो सकती है।

इस सारे निवेदनको हाथ जोड़े हुए वे कथावाचकजी दत्त-चित्त होकर सुन रहे थे। उनके दोनों कपोलोंपर उभरती हुई भाव-रेखाएँ तथा उनके दोनों नेत्रोंकी भीगती हुई स्थिर-पुतलियाँ उनके परम संतोष,

उनके परम आनन्द और उनकी परम तृप्तिको व्यक्त कर रही थीं।

ये तीनों कवित्त हमारे मानस-पाठके मध्य नित्य आते हैं और सदा सभीके सामने रहते हैं, पर सदा सामने रहकर भी उनका मर्म अव्यक्त ही रहता था। व्यक्त रह करके भी अव्यक्त रहना, ऐसे रहस्यात्मक भ्रमको दूर कर पाता है कोई मर्मी ही। उस अव्यक्त रहस्यका मर्मोद्घाटन हो पाता है उसके द्वारा, जिसे उस मर्मकी पहचान हो और जिसकी उस रहस्यतक पहुँच हो। बाबाके श्रीमुखसे श्रीरामचरितमानसके प्रतिपाद्यको सुनकर सभी विस्मित थे, पुलकित थे और आनन्दित थे।

* * * * *

चातकी निष्ठा

जनवरी मासकी बात है। बाबा प्रतिदिन प्रातःकाल नवद्वीपके श्रीबड़ेबाबाजी (पूज्य श्रीराधारमणचरणदासजी महाशय) का जीवन वृत्त सुना करते थे। यह जीवन वृत्त 'चरित सुधा'के नामसे छः भागोंमें प्रकाशित है। वृत्त सुननेका यह क्रम बहुत दिनोंसे चल रहा था। २५ जनवरीके प्रातःकाल कुछ ऐसा प्रसंग आया, जिसका प्रतिपाद्य यही था कि भक्त सर्वदा संसारसे विमुख रहकर सर्वथा ईश्वरोन्मुखी रहता है। बाबा इसी भावमें बह रहे थे। बहते-बहते ऐसा लगने लगा कि उनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र डूब जाना चाहती है। तभी बाबाने ये श्लोक कहे –

ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन।
ऐहिक तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा।।
आमुष्मिकं प्रियः/प्रभुः कृष्णः स्वयमेव करिष्यति।

सरःसमुद्रनद्यादीन्विहाय चातको यथा।।
तृषितो म्रियते चापि याचते वै पयोधरम्।
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत्।।

ये श्लोक पद्मपुराणके हैं। बाबाको ये अत्यन्त प्रिय रहे। कभी-कभी इन श्लोकोंके बारेमें बाबा कहते थे – इन श्लोकोंकी रचना करते समय भगवान् श्रीवेदव्यासजी महाराजकी न जाने कैसी भावमयी

स्थिति रही होगी। जब-जब इन श्लोकोंकी स्मृति होती है, तब-तब भावका स्रोत केवल बहता नहीं, उसका प्रबल प्रवाह उमड़ पड़ता है।

चातककी निष्ठा बाबाके लिये सदा ही भावोद्दीपक रही है। जब भी चातककी एक-निष्ठताका प्रसंग आता, बाबाकी गति-मति-स्थिति कुछ और ही हो जाया करती थी। वही बात आज हुई। भगवान वेदव्यासजी द्वारा रचित इन तीनों श्लोकोंको कहनेके बाद बाबाने मन्द स्वरमें कहा – 'पी कहाँ? पी कहाँ? कुछ देर मौन रहकर फिर बाबाने करुण स्वरमें कहा – 'पी कहाँ? पी कहाँ?' थोड़ी देर बाद फिर इसी प्रकारसे कहा और कहकर फिर मौन ही नहीं हुए, सर्वथा अन्तर्मुख हो गये। बाबा तो अपने आसनपर बैठे हुए थे, पर अपने ही कन्धेका सहारा लेनेके लिये उनकी गर्दन एक ओर लटक गयी। पास बैठे हुए लोग एकटक उनकी निःस्पन्द-निश्चेष्ट मुखाकृतिकी ओर देखने लगे।

बहुत देरतक ऐसी स्थिति बनी रही। परिक्रमाका समय हो रहा था। बाबाको प्रकृतिस्थ करनेके लिये उनसे अनुरोध किया गया – बाबा! अभी मंजन करना है न?

यह अनुरोध अनसुना रह गया। थोड़ी देर बाद पुनः अनुरोध किया गया। यह अनुरोध भी निष्फल रहा। बाबाकी यह स्थिति याद दिला देती है पहले कभी सुनी हुई एक बातकी। पहले कई बार ऐसा हुआ है कि प्रबल भावावेगके कारण बाबाको शरीरकी सुधि नहीं रहती थी। पूज्या माँ बाबाको भिक्षा कराने बैठी हैं। बाबाके सामने पत्तल है तथा पत्तलमें माँने रोटी-शाक-दाल परोस दिया है, पर भिक्षा करनेकी सुधि बाबाको नहीं। तब माँ कहती – बाबा! रोटीका टुकड़ा तोड़िये। टुकड़ेके साथ शाक भी लें।

कई बार मुखका ग्रास मुखमें और हाथका ग्रास हाथमें ही रह जाता। बार-बार स्मरण कराना पड़ता कि ग्रास खा लें। जिस प्रकार एक बालकको भोजन कराया जाता है, पूर्णतः उसी भाँति भिक्षा करानी पड़ती।

आज भी बाबाकी अन्तर्मुखता कम नहीं थी। किंचित् प्रयासके बाद बाबा थोड़े बहिर्मुख हुए। आसनपरसे उठाकर बाबाको धीरे-धीरे लाया गया। शारीरिक अशक्तताके कारण उठने-बैठने-चलनेके समय बाबाको थोड़े सहारेकी आवश्यकता पड़ा करती थी, पर इस समय तो

केवल अशक्तता नहीं, भाव-निमग्नताके कारण शरीरमें शिथिलता भी पर्याप्त थी। कुछ दूरीपर स्थित पाटेपर जब बाबाको मंजन करनेके लिये बैठाया गया, वहाँ बैठते ही बाबा पुनः अन्तर्मुख हो गये। रह-रह करके बाबाको स्मरण दिलाना पड़ रहा था कि आप मंजन कर लें। मंजन-स्नानादिसे निवृत्त होकर बाबा परिक्रमाके लिये पधारे अवश्य, पर शरीरमें शिथिलता होनेके कारण चलनेकी क्रिया प्रयास और सावधानीके उपरान्त सम्पन्न हो पा रही थी।

कुछ दिनों पहलेकी एक बात है। बाबासे सहज रूपसे बातचीत हो रही थी। बातचीतके प्रवाहमें प्रसंगानुरोधसे मैं बाबाको विभिन्न संतों-भक्तोंके भिन्न-भिन्न आदर्श सुनाने लगा। केरलके एक संत हैं, जिनके जीवनका आदर्श है वृक्षसे टूटकर नीचे गिरा हुआ सूखा पत्ता। उस सूखे पत्तेको पवन जहाँ चाहे, वहाँ ले जाये। इसी प्रकार भगवत्कृपा मुझे जहाँ चाहे, वहाँ ले जाये; जैसे चाहे, वैसे रखे। अपना कोई आग्रह अथवा अनुरोध नहीं।

व्रजमण्डलके एक संत थे, जिनका आदर्श था कन्दुक। क्रीड़ारत प्रिया जब कन्दुक उछालती हैं तो प्रियतम अपने हाथमें थाम लेते हैं और जब प्रियतम उस कन्दुकको उछालते हैं तो श्रीप्रिया अपने आँचलमें रोक लेती हैं। मैं उनके विलास और विनोदका उपकरण बना रहूँ।

श्रीकृष्णप्रेमजी भिखारी (अँगरेज महात्मा श्रीनिक्सन साहब) का आदर्श था धनुषसे छूटा हुआ तीर, जो बीचमें कहीं रुकता नहीं, ठहरता नहीं। बस, सर्व-प्रथम लक्ष्यतक पहुँचना है। लक्ष्य-प्राप्ति ही तीरकी तीव्र गतिकी सीमा है।

परम भक्त श्रीसूरदासजीका आदर्श था चकोर, निरन्तर चकोरवत् अपने प्राणाराध्यके मुख-चन्द्रकी सुन्दर सलोनी छविका दर्शन करना।

संत कबीरका आदर्श रहा है चितापर चढ़ी हुई सती। प्रज्वलित चिताकी ज्वालासे घिरे रहनेपर भी जिसके अधरोंपर आहकी कराह नहीं, लपटोंसे लिपटी देहके दग्ध होते रहनेपर भी देहकी ओर जिसका ध्यान नहीं, बस, उस सतीका है एक ही स्वर, एक ही चाह – 'कब देखौं मुख पीव, कबरु मिलहुगे राम'।

विभिन्न संतों-भक्तोंके भिन्न-भिन्न आदर्शोंको मैं कह ही रहा था

कि बाबा तुरन्त बोल उठे – भइया रे! मेरा आदर्श तो चातक है, जो निरन्तर 'पी-कहाँ', 'पी-कहाँ' रटता ही रहता है।

जिनकी राधाके जीवनमें क्रन्दन-ही-क्रन्दन है, उन बाबाके जीवनका आदर्श 'पी-कहाँ', 'पी-कहाँ' की सदा-सर्वदा रट लगानेवाला चातक हो तो क्या आश्चर्य? बाबाके समक्ष जब-जब चातक-निष्ठाकी चर्चा होती और चातकी-निष्ठा भी जहाँ फीकी पड़ जाये, उस राधा-हृदयस्थ-श्याम-निष्ठाकी, श्यामानुरागिणी राधाकी अचिन्त्य निष्ठाकी जब-जब चर्चा आती, तब-तब बाबाकी चेष्टाओंका रूप, उनकी मुखाकृतिका रंग, उनके स्वरोच्चारका ढंग कुछ और ही हो जाया करता था। न जाने कैसे बाबा इन सबको अपने भीतर सँजोये रहते थे और छिपाये रह पाते थे।

* * * * *

परमार्थ और प्रपंच

सन् १९८१ के फरवरी मासमें एक दिन भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ाका मन बहुत खिन्न हो गया। यह खिन्नता हुई बाबाके पास आनेवाले लोगोंकी जागतिकताको देखकर। बाबाके पास लोग आते हैं, शहरके लोग आते हैं, दूर-दूरसे लोग आते हैं और वे लोग अपनी जागतिक समस्याएँ बाबाके सामने रखते हैं। किसीको नौकरी चाहिये, किसीके परिवारमें झगड़ा है, किसीको चिकित्साके लिये सहायता चाहिये, कोई पढ़ाईकी फीसके लिये व्यवस्था चाहता है और विधवा बहिनोंका प्रश्न सबसे जटिल होता है। सभी लोगोंके मनमें अपनी-अपनी समस्याके लिये अत्यधिक महत्त्व है और उन-उन समस्याओंको समझनेमें और सलटानेमें बाबाका काफी समय निकल जाया करता है। भाई श्रीचोपड़ाजीके शब्दोंमें वह समय व्यर्थ ही जाता है। जितने लोग बाबाके पास आते हैं, उनमें लगभग अस्सी-नब्बे प्रतिशत लोग अपनी पारिवारिक- शारीरिक-सांसारिक समस्या लेकर ही आते हैं। बाबा यदि केवल भक्ति सम्बन्धी चर्चा करते तो न जाने कितने लोगोंको प्रेरणा मिलती, परन्तु इस सांसारिक चर्चामें बाबाका बहुत-सा समय खप जाता है। इसे देखकर श्रीचोपड़ाजीने बाबासे कहा – बाबा! व्रजभूमिके एक

संत हैं। वे जगतके प्रपंचसे सम्बन्धित बात न सुनते हैं और न करते हैं। उनसे कोई बात होती है तो केवल भगवद्विषयक। इसका परिणाम यह है कि उनके चारों ओरका वातावरण आध्यात्मिकताके सुवाससे सदा परिपूर्ण रहता है। उस आध्यात्मिक वातावरणके फलस्वरूप उनके पास आनेवाले हर व्यक्तिको लोकोत्तर सुख-शान्ति-शीतलताकी प्राप्ति होती है। क्या आप भी ऐसा नहीं कर सकते कि आपके पास आनेवाले आपके सामने एकमात्र आध्यात्मिक और साधनात्मक समस्या रखा करें।

बाबाने श्रीचोपड़ाजीसे कहा – आपने व्रजभूमिके जिन संतकी बात बतलायी, उनकी वह रहनी और करनी सब प्रकारसे अनुमोदनीय और अभिनन्दनीय है। क्या आप वही मुझसे भी चाह रहे हैं? अरे चोपड़ाजी! मेरी दृष्टि सर्वथा दूसरी है। यह पारमार्थिक है और वह प्रापंचिक है, यह भेद मेरे लिये नहीं रह गया है। पारमार्थिक और प्रांपचिक कहकर कोई वर्गीकरण करना चाहे तो भले कर ले। कोई वर्गीकरण करके मात्र पारमार्थिक और आध्यात्मिकको ग्राह्य तथा प्रापंचिक और सांसारिकको त्याज्य भले समझे और तदनुसार आचरण भले करे, परन्तु मेरा स्तर सर्वथा अलग है। मेरी दृष्टिमें तो क्या परमार्थ और क्या प्रपंच सर्वत्र और सदैव भगवल्लीलाका नित्य विलास है। मेरे लिये दिन और रात, यह और वह, यह सारा भेद समाप्त हो गया। 'जित देखूँ तित स्याममयी है'। भगवानके चिद्विलासके अतिरिक्त और है क्या? अतः मैं क्यों एकको वरेण्य और दूसरेको निन्दनीय मानूँ? मैं तो भगवद्भावकी रसमयी लहरोंपर लहराता रहता हूँ और जब जैसा सामने आता है, सबमें भगवद्दर्शन करते हुए तदनुसार कार्य करता रहता हूँ।

इस उत्तरसे श्रीचोपड़ाजीकी सारी खिन्नता दूर हो गयी। केवल खिन्नता दूर नहीं हुई, अपितु परम प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता हुई इसलिये कि भगवत्प्राप्त संतकी भागवती दृष्टिका प्रकर्ष उदाहरण देखने-समझनेका अवसर मिला। 'सियराम मय सब जग जानी' अबतक पढ़ते थे, सुनते थे और कहते थे, परन्तु आज उसका प्रत्यक्ष जीवन्त रूप देखनेको मिला।

* * * * *

श्रीगिरिराज-परिक्रमा की एक झाँकी

सन् १९८१ के वर्ष श्रीराधाष्टमी-महोत्सव रविवार ६ सितम्बरको था। महाराजजी (पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) गीतावाटिका ३ सितम्बर, ८१ के दिन पधारे। साथमें श्रीठाकुरजी तथा अन्य लोग थे। बाबा प्रातःकालसे ही महाराजजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही महाराजजीके आनेका संवाद मिला, बाबाने आगे बढ़कर महाराजजीका स्वागत किया। हाथ पकड़े-पकड़े महाराजजीको बाबा अपनी कुटियातक ले आये तथा विराजित होनेके लिये एक उच्चासन दिया। महाराजजी तो बाबासे मिलकर विह्वल हो रहे थे। नेत्र तो उनके बन्द थे, पर महाराजजी अपने नेत्रोंके प्रेमाश्रुओंको बार-बार पोंछ रहे थे। भावके शमित होनेपर महाराजजीको पुष्पमाला स्मरण हो आयी। श्रीबिहारीजीकी प्रसादी-माला महाराजजी अपने साथ वृन्दावनसे ले आये थे। ज्यों ही महाराजजीने अपने हाथमें पुष्पमाला ली और बाबाको पहनानी चाही, त्यों ही बाबाने वह पुष्पमाला अपने हाथमें ले ली और वह पुष्पमाला महाराजजीको ही पहना दी। ऐसा तो पहले कभी नहीं होता था। बाबाद्वारा माला पहनाये जानेके नवीन प्रसंगको देखकर सभी बड़े आनन्दित हुए। फिर महाराजजीने दूसरी माला बाबाको पहनायी। कुशल समाचार पूछनेके बाद बाबा कहने लगे – आपके शुभागमनसे ही इस वर्ष राधाष्टमी-महोत्सवका शुभारम्भ हो गया। आपकी उपस्थितिसे ही इस महोत्सवकी शोभा है। इतना ही नहीं, आपकी उपस्थितिमें ही महोत्सवकी सम्पन्नता निहित है।

जब महाराजजी बाबाके पाससे विश्राम करने तथा प्रातःकालीन स्नानादि नित्य-क्रियासे निवृत्त होनेके लिये चले गये, इसके बाद भी बाबाने वह माला नहीं उतारी। वह प्रसादी-माला महाराजजीके सांनिध्यका सुख प्रदान कर रही थी। महाराजजी अपनी शय्यापर किंचित् विश्राम करनेके लिये लेट चुके हैं, इस संवादके मिलनेके बाद ही बाबाने माला उतारी और उतारकर उसे अपने बिस्तरके सिरहाने रख ली।

दिनांक ५ सितम्बर अर्थात् सप्तमी तिथिको तो परिक्रमाके समय बड़ा ही सुन्दर दृश्य देखनेको मिला। बाबा तो अपने नित्य-नियमके अनुसार श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा कर रहे हैं, पर उनके साथमें श्रीप्रिया-प्रियतम भी हैं। कल अपराह्नकालमें वृन्दावनसे श्रीश्रीरामजी श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली आ गयी थी। श्रीश्रीजी तथा श्रीठाकुरजी शृङ्गार धारण करके बाबाके साथ-साथ परिक्रमामें चल रहे हैं। बाबाका हाथ कभी श्रीश्रीजी अपने हाथमें ले लेती हैं और कभी श्रीप्रियतम अपने हाथमें। इधर तो श्रीहरिवल्लभजी और श्रीफतेहकृष्णजी सुन्दर-सुन्दर पद गा रहे थे और उधर श्रीप्रिया-प्रियतमसे हँसते-बतराते हुए बाबा मन्द गतिसे परिक्रमा लगा रहे थे। उस समयका दृश्य बड़ा चित्ताकर्षक था। श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ बाबा परिक्रमा दे रहे थे कि रासमण्डलीके स्वामी श्रीफतेहकृष्णजीने रासके पदोंका गायन आरम्भ कर दिया। फिर क्या कहना था? परिक्रमा-पथमें श्रीप्रिया-प्रियतमने रास-नृत्य आरम्भ कर दिया। एक बार परिक्रमा करनेका क्रम ठहर गया। श्रीप्रिया-प्रियतमका नृत्य तो, बस, देखने योग्य ही था। बार-बार यही लग रहा था कि श्रीसूरदासजीकी पंक्तियाँ यहाँ यथार्थ रूपसे घटित हो रही हैं। 'नृत्यत स्याम स्यामा हेत'।

एक बड़ी विचित्र बात और। नृत्य करते-करते एक-दो बार ऐसा हुआ कि ज्यों ही नृत्यके बीच समकी ताल आयी, श्रीप्रियतमने बाबाके चिबुकका स्पर्श किया – श्रीप्रियतमका ऊपर उठा हुआ दाहिना हाथ बाबाके चिबुकका स्पर्श कर रहा है तथा बाँया हाथ पीछेकी ओर फैला हुआ है। इस छविको देखकर हम सभीको आनन्द तो हुआ ही, आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। कोई सोच ही नहीं सकता था कि अत्यधिक मर्यादावादी और अत्यधिक संगोपनप्रिय बाबाके प्रति ऐसी चेष्टा भरी सभाके बीच हो सके। बाबाकी अप्रसन्नताको मोल लेनेका साहस भला कौन करेगा? पर इस ठाकुरको तो न तनिक संकोच और न किंचित् संभ्रम! ऐसी उन्मुक्त चेष्टाको देखकर हम सभीको बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

श्रीप्रियतमकी इस सर्वथा सहज चेष्टाके बारेमें महाराजजी तो बादमें

हमलोगोंसे स्पष्ट रूपसे कहने लगे कि इस ठाकुरस्वरूप पर बाबाके 'आन्तरिक भाव-स्वरूप'की छाया अवश्य पड़ी है। यदि बाबाके 'आन्तरिक भाव-स्वरूप'की स्फूर्ति इन ठाकुरजीके अन्दर नहीं हुई होती तो यह सम्भव ही नहीं था कि रास-नृत्य करते-करते ऐसा हो सके।

जिस पदको तो समाजी गा रहे थे, उसी पदको अपनी मौजमें श्रीप्रियतम नृत्य करते-करते, नृत्यमयी चालसे चलते-चलते दूर बैठे हुए बाबाके पास आये और बाबाके कानमें धीरेसे कहा – तुव मुख चंद चकोर मेरे नैना राधे!

मैं बाबाके पास, एकदम समीप बैठा हुआ था, अतः श्रीप्रियतमकी यह परम ऐकान्तिक उक्ति मुझे भी सुनायी पड़ गयी। इसे सुनकर बाबा श्रीप्रियतमकी ओर चकित दृष्टिसे देख रहे थे और हम एक-दो व्यक्ति बाबा और श्रीप्रियतमकी ओर अवाक् बने हुए देख रहे थे। सचमुच, महाराजजीने जो कहा था, वह सही कहा था। एक अन्य प्रसंगने तो महाराजजीके कथनकी और भी अधिक पुष्टि कर दी। जब श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ बाबा परिक्रमा लगा रहे थे तो श्रीहरिवल्लभजीने एक-दो पदोंके गानेके बाद अगले पदका गायन आरम्भ किया –

'यह बन आप ही सौं सुहात'।

परिक्रमाके बीचमें ही बाबाके चिबुकका अँगुलियोंसे स्पर्श करके श्रीप्रियतम कहने लगे – हे किसोरीजू! हे राधेजू!! आपसौं ही या वनकी सोभा है।

* * *

निर्माणाधीन श्रीराधाकृष्णमन्दिरकी नींवकी खुदवायीके कामका आरम्भ षष्ठी तिथिको हो चुका था। नींवकी दीवालको खड़ी करनेका शुभ मुहूर्त राधाष्टमीको ही था। प्रातःकालीन प्रभातफेरीके बाद यह कार्य सम्पन्न हुआ। सन् १९७१ ई. में बाबूजी नित्य लीलामें लीन हुए थे। तबसे लेकर अबतक बाबाने किसी भी उत्सव-पण्डालमें प्रवेश नहीं किया था, पर आज बाबाकी प्रेमाधीनता देखने योग्य थी। नींव भरनेका कार्य आरम्भ हो, इसके पहले श्रीगणेशजी-श्रीवास्तुदेवता आदिके पूजनका कार्यक्रम एक छोटे-से पण्डालमें सम्पन्न होनेवाला था। सबके मनपर

यही संस्कार था कि बाबा तो पण्डालमें जायेंगे नहीं, अतः हम लोगोंने इतनेपर ही सन्तोष कर लिया था कि बाबा खुले आकाशके नीचे दूर बैठे हुए इस कार्यक्रमको देखते रहें। बाबाके बैठनेके लिये एक समुचित स्थान निश्चित भी कर लिया गया था।

शृङ्गार धारण किये हुए श्रीप्रिया-प्रियतम बाबासे अनुरोध करने लगे; अनुरोध नहीं, उन्होंने आग्रह करना आरम्भ कर दिया – बाबा! आप तो हमारे साथ-साथ चलें। बस, चले चलें।

और इस आग्रहका वह सुन्दर परिणाम देखनेको मिला, जो विगत दस वर्षोंमें नहीं हुआ था। श्रीप्रिया-प्रियतमके स्नेह-सने वचनोंको बाबा टाल नहीं सके। बाबाकी दृष्टिमें रासलीलाके ये स्वरूप वस्तुतः श्रीप्रिया-प्रियतम ही हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि बाबाको कुछ संकोच अवश्य हो रहा होगा, पर बाबा उनके अनुरोधको टाल नहीं पा रहे थे। श्रीप्रिया-प्रियतमके स्नेहानुरोधको सम्मान देते हुए और उनके हाथोंका सहारा लिये हुए बाबा पूजन-पण्डालमें आये। श्रीप्रिया-प्रियतम एक उच्च सिंहासनपर विराजित हुए और बाबाको अपने मध्यमें ही उसी सिंहासनपर विराजित कर लिया। पूजनके उपरान्त सर्वप्रथम महाराजजीने सिमेंट-कंकड़का गारा नींवमें डाला, इसके बाद पूज्या माँने डाला, तदुपरान्त बाईने और इस प्रकार नींवकी दीवालको खड़ा करनेके कार्यका शुभारम्भ हुआ।

इस बार रास-लीलाका रस ऐसा बहा कि बाबातक बहुत प्रभावित हुए। अन्योंकी क्या कही जाये, गीतावाटिकासे रासमण्डलीके चले जानेके बाद स्वयं बाबाने कहा कि वाटिका उदास लग रही है।

* * * * *

भगवद्रुचि और कार्यचुनाव

आदरणीया बहिन विमला देवी भारद्वाजका भतीजा प्रिय श्रीराकेश शर्मा २० मार्च १९८१ को गोरखपुर आया। वह लखनऊके मेडिकल कालेजमें पढ़ता था। होलीकी छुट्टियोंमें पूज्य बाबाका दर्शन करनेके लिये चला आया। उसकी चार वर्षकी पढ़ाई पूरी हो चुकनेमें, केवल एक वर्ष और रह गया था। जब वह प्रणाम करके पूज्य बाबाके पास बैठा हुआ

था, तब उससे पूज्य बाबाने पूछा – अध्ययन पूरा कर चुकनेके बाद क्या विचार है? नौकरी करोगे अथवा स्वतन्त्र रूपसे चिकित्सा-कार्य करोगे?

श्रीराकेशने बतलाया – बाबा! अभी मैंने कुछ सोचा नहीं है। एम.बी. बी.एस. की डिग्री मिलनेके बाद पिताजीसे पूछकर ही कोई निर्णय लूँगा।

पूज्य बाबाने प्रिय श्रीराकेशकी मातृ-पितृ-परायणताकी उन्मुक्त सराहना की। फिर उससे पूज्य बाबाने कहा – कार्यके चुनावके बारेमें यदि भगवानकी इच्छाकी जानकारी हो जाय तो और भी सुन्दर बात होगी। यदि भगवानकी रुचिके अनुसार कदम उठाया और बढ़ाया जाय तो फिर सारी जिम्मेदारी भगवानके ऊपर आ जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि भगवानकी रुचिकी जानकारी कैसे हो। जानकारी प्राप्त करनेकी जो सात्त्विक प्रक्रिया है, उसके बारेमें मैं तुमको कुछ बतलाऊँ, इसके पहले तुम यह बतलाओ कि तुम किनकी आराधना करते हो?

श्रीराकेश – भगवान शिवकी।

पूज्य बाबा – क्या तुमने यज्ञोपवीत ले रखा है?

श्रीराकेश – अभी नहीं। हमारे यहाँ आजकल ऐसी प्रथा हो गयी है कि जनेऊ विवाहके अवसरपर कुछ दिन पहले दिया जाता है।

पूज्य बाबा – कोई बात नहीं। क्या तुम तीन दिनतक केवल फल खाकर रह सकते हो?

श्रीराकेश – आसानीसे रह सकता हूँ।

पूज्य बाबा – तीन दिनतक अन्नका एक कण भी नहीं खाना है। अन्नसे स्पर्शित वस्तु भी नहीं लेनी है। जब तुम अध्ययन पूर्ण कर चुको और तुम्हारे सामने प्रश्न खड़ा हो कि मुझे द्रव्यार्जनके लिये कौन-सा मार्ग चुनना चाहिये, उस समय तुम एक काम करना। यह तो मेरा मात्र परामर्श है, किन्तु यदि इस परामर्शके अनुसार कार्य करोगे तो तुमको बहुत लाभ होगा। उस समय तुम तीन दिनतक केवल फलके आहारपर रहना। इस तीन दिनकी अवधिमें अधिक-से-अधिक 'नमः शिवाय' का जप करना। आवश्यक निद्रा अवश्य लेना। शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होनेके बाद जपमें लग

जाना। भगवान शिवसे मार्ग-प्रदर्शनके लिये प्रार्थना करना। उनसे अनुनय करना कि मैं किस मार्गका अनुसरण करूँ। जो उचित हो, वह आप बतलानेकी कृपा करें। इस प्रकार यदि तुम यह प्रार्थना संयम-सदाचार पूर्ण रहते हुए ईमानदारीसे श्रद्धा-सहित तत्परतापूर्वक करोगे तो दो बातमेंसे एक बात अवश्य होगी। भगवान शिव स्वप्नमें पधारकर निर्देश दे देंगे कि क्या करना चाहिये। जो निर्देश होगा, वही उनकी रुचि माननी चाहिये। यह होगा अथवा दूसरी बात यह होगी कि भगवान शिव तुम्हारी बुद्धि ही बदल देंगे। तुम्हारी बुद्धि भगवान शिवकी कृपासे इतनी बदल जायेगी और ऐसी निर्मल हो जायेगी कि तुम उसी बातका निर्णय करोगे, जो भगवान शिवको अभीष्ट होगा। भगवानकी रुचिके अनुसार कार्य करनेपर सारी जिम्मेदारी भगवानपर आ जाती है।

यह सब सुनकर प्रिय श्रीराकेशको बड़ी प्रसन्नता हुई।

* * * * *

सरस कथा का आकस्मिक आयोजन

सर्वप्रथम मैं पूज्य श्रीकृपाशकंरजी महाराजको सादर प्रणाम करता हूँ। आप श्रीरामचरितमानसकी सुधा-वर्षिणी और भक्ति-पोषिणी कथा बड़ी रोचक रीतिसे कहा करते हैं। आपका मानस और भागवतपर समान रूपसे अधिकार है। आपका श्रीअयोध्याधाममें स्थायी रूपसे निवास है और आप प्रतिदिन श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा कहा करते हैं। जब-जब आप कथा कहते हैं, तब-तब गीतावाटिकाकी दोनों विभूतियों अर्थात् बाबूजी एवं बाबाके सम्बन्धमें कोई-न-कोई चर्चा आपकी कथाके बीचमें प्रायः आ ही जाया करती है। आपका गीतावाटिकासे बहुत पुराना सम्बन्ध है। आपने यहाँ सबसे पहले सन् १९५२ में श्रीरामचरितमानसकी कथा कही थी और उस मानस कथाके प्रधान श्रोता थे पूज्य श्रीसेठजी, बाबूजी तथा बाबा। गीतावाटिकाके आध्यात्मिक वातावरण और इन युगल भाव-विभूतियोंसे आपको सदा प्रश्रय और पोषण मिलता रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि वे यहाँसे प्रेरणा लेते रहे हैं और प्रेरणा देते भी

रहे हैं।

बाबाने कई बार कहा है कि मैंने मानस प्रवचन अनेक कथावाचकोंसे सुना है, किन्तु उल्लेखनीय तीन ही व्यक्ति हैं, जिनकी कथा सुनकर बहुत भावोद्दीपन होता है। एक थे श्रीदीनजी रामायणी, दूसरे हैं श्रीकृपाशंकरजी और तीसरे व्यक्तिका नाम बाबाने बतलाया था, पर मुझे इस समय याद नहीं आ रहा है।

सन् १९८१ के आस-पासकी बात होनी चाहिये। एक बार श्रीकृपाशंकरजी महाराज श्रीअयोध्यासे श्रीजनकपुर जा रहे थे और मार्गके बीचमें गोरखपुर पड़ता है, अतः आप यहाँ गीतावाटिकामें बाबाके दर्शनार्थ एक दिनके लिये ठहर गये। दूसरे दिन श्रीजनकपुरके लिये प्रस्थान करनेसे पूर्व बाबूजीकी समाधिके पास श्रीमहाराजजीकी कथाका कार्यक्रम रखा गया। 'रखा गया' के स्थानपर कहना यह चाहिये कि 'स्वान्तः सुखाय', आकस्मिक आयोजन हो गया। यह कोई प्रचारित या विज्ञापित आयोजन नहीं था। मुख्य श्रोता थे बाबा और थे गीतावाटिकाके बीस-तीस लोग।

बाबा जब अपने आसनपर आकर विराज गये, तब श्रीकृपाशंकरजी महाराजने भगवत्कथाका ललित स्वरसे शुभारम्भ किया। वन्दनाके श्लोक कह चुकनेके उपरान्त उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराणका एक श्लोक उठाया। वह श्लोक था –

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
(श्रीमद्भागवत – ६/११/२६)

अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें वृत्रासुर भगवानसे प्रार्थना कर रहा है कि जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे चारेके लिये अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पतिव्रता पत्नी अपने प्रवासी पतिसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए और कतिपय भक्तोंके जीवनसे दृष्टान्त देते हुए श्रीकृपाशंकरजी महाराजने बतलाया कि जिस प्रकार नवजात पक्षीशावक, क्षुधार्त बछड़ा और वियोगिनी पत्नीके हृदयमें अपने-अपने अभीष्टके लिये जो आकुलता होती है, उससे सम्भवतः कई गुना अधिक आकुलता भक्तके हृदयमें अभीष्ट भगवद्दर्शनके लिये होती है। भगवान और भक्तके मध्य भक्त-हृदयका जो पक्ष है, वही इस श्लोकमें वर्णित है। इस श्लोकमें पक्षी-शावक, गै-वत्स और पतिव्रताकी भावनाका वर्णन तो है, परन्तु इस वर्णनके साथ दूसरे पक्षका अर्थात् पक्षी-गाय-प्रियतमकी भावनाका वर्णन उन्मुक्त रूपसे उभर नहीं पाया है और उसीको उभारते हुए उन्होंने भगवत्पक्षका वर्णन किया। भगवानके हृदयमें भक्तसे मिलनेके लिये जो ललक होती है, उसका वर्णन इतना मार्मिक था कि उसे सुनकर बाबाके नेत्रोंसे अश्रु झर-झर बहने लगे।

श्रीकृपाशंकरजी महाराजने कहा— यदि भगवद्दर्शनके लिये भक्तके हृदयमें अत्युत्सुकता है तो भक्त-मिलनके लिये भगवानके हृदयमें तीव्रोत्कण्ठा है और यह तीव्रोत्कण्ठा उस अत्युत्सुकतासे अनन्त गुना होती है। 'ईस्वर अंस जीव अविनासी'। वस्तुतः जीव भगवानका अविनाशी अंश है और वे प्रतीक्षा करते रहते हैं कि मेरा अंश जीव, जो भवाटवीमें भटक रहा है, वह मुझसे कब मिलेगा। यदि सरिता सागरसे मिलनेके लिये अत्युत्सुक है तो सागर भी सरिताका स्वागत करनेके लिये तीव्रोत्कण्ठित है।

भक्तके हृदयमें होनेवाली भगवद्दर्शन-लालसाका वर्णन तो सुन्दर था ही, उसीके साथ-साथ भगवानके अन्तरमें जीवसे मिलन हेतु ललकका वर्णन इतना सरस था कि उस वर्णनका एक-एक वाक्य मानो एक-एक सोपान था और सोपान-प्रति-सोपान क्षण-प्रति-क्षण बाबा भाव-सागरमें गहरे-से-गहरे उतरते चले जा रहे थे। इस कथामें श्रोता बाबाके दोनों नयन निमीलित थे ही, वक्ता श्रीमहाराजजीके भी दोनों नयन निमीलित थे। वक्ता और श्रोता दोनोंके निमीलित नयनोंसे अश्रु-बिन्दु अविरल झर रहे थे; बस, अन्तर

इतना ही था कि यदि निमीलित नयन और संसिक्त कपोल बाबा मूर्तिवत् निस्स्पन्द बैठे थे तो भावभरित और प्रीतिविह्वल महाराजजीके अंगोंमें कभी-कभी कोई चेष्टा होती थी। उनके हाथोंमें और हाथोंकी अँगुलियोंमें प्रसंग-वर्णन करते समय भावाभिव्यक्तिके लिये कभी-कभी किसी चेष्टाका हो जाना स्वाभाविक था। सारे वातावरणमें एक मात्र व्याप्त थी श्रीमहाराजजीकी वाणी। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ था ही नहीं। हाँ, कभी-कभी सुन पड़ता था पक्षियोंका कूजन। समाधि परिसरमें जो पेड़-पौधे हैं, उनपर बैठे हुए ये पक्षी भी शायद कथा सुननेके लिये आये होंगे और कूजनके मिस शायद कथाकी सराहना ही कर रहे होंगे। सराहना-परायण यह खगकुल-कलरव भी सुन पड़ता था केवल हम अन्य साधारण लोगोंको, पर उनको नहीं, जो कथाके विभोर वक्ता थे और निमग्न श्रोता थे।

यह कथा सम्भवतः एक घण्टा हुई होगी। कथाके पूर्ण होनेके बाद श्रीमहाराजजी अपने विश्राम कक्षमें चले आये और बाबा अपनी कुटियाकी चौकीपर गुम-सुम लेट गये। भगतजीने बाबाकी चौकीपर मच्छरदानी लगा दी, जिससे मक्खी-मच्छरकी बाधा न हो। बाबा दिनभर अपने बिस्तरपर लेटे रहे। मिलने और दर्शन करनेके लिये अनेक लोग दिनभर आते रहे, परन्तु सबको यही लगता था कि आज सम्भाषणकी सम्भावना है ही नहीं। सभी लोग बाड़ेके द्वारसे ही बाबाको प्रणाम करके चले जाया करते थे।

* * * * *

श्रीआनन्दमयी माँ

बाबाके प्रति वन्दनीया माँकी बड़ी महत्त्व-बुद्धि थी। केन्द्रीय सरकारके भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री डा. श्रीत्रिगुण सेनके सामने एक बार माँने कहा था – 'राधा बाबा प्रेम, भक्ति और सत्यका प्रतीक। भक्ति मार्गका जीवन्त मूर्ति।'

एक बार और माँने अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे 'एक स्थिति है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ नहीं। द्वैत अद्वैत ज्ञान भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबाकी है।'

एक बार माँके एक भक्तके हाथमें बाबाद्वारा लिखित 'जगज्जननी श्रीराधा' नामक पुस्तिका थी। वह पुस्तिका माँकी दृष्टि-पथपर आ

गयी। माँने वह पुस्तिका माँग ली और उनसे कहा – तुम अपने लिये और मँगवा लो।

* * *

माँ योग्य साधकको भी बाबाके पास भेज दिया करती थीं। सन् १९८१ के जूनके मध्यमें माँने एक बंगाली युवक साधकको बाबाके पास भेज दिया। उनका नाम था श्रीनिर्मल ब्रह्मचारी। श्रीनिर्मलजी उच्च घरानेके व्यक्ति थे। वे एक फर्ममें मैनेजर थे। भगवान श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह मनमें जगते ही एक कम्बल ले करके तथा अपनी माँको प्रणाम करके घरसे बाहर निकल पड़े। कम्बलके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। वे चले आये आनन्दमयी माँके पास। वन्दनीया माँने इनके वस्त्र तथा आवासकी व्यवस्था की। इनकी श्रीकृष्ण-भक्ति देख करके माँने यही उचित समझा कि श्रीनिर्मल ब्रह्मचारीको गीतावाटिकाके राधा बाबाके पास भेज दिया जाये। माँने अपने निजी व्यक्तिसे कहा – आप निर्मलको राधा बाबाके पास छोड़ आइये। फिर राधा बाबा जानें। जबतक राधा बाबा चाहें, अपने पास रखें और जबतक निर्मल चाहे, वहाँ रहे।

वे सज्जन अपने साथ श्रीनिर्मलजीको तो लाये ही थे, इसके अतिरिक्त माँ द्वारा प्रदत्त चन्दन-पुष्पमाला और पुष्कल प्रसाद लाये थे, जिसको बाबाने बड़े ही सम्मानके सहित स्वीकार किया। माँके द्वारा भेजे गये श्रीनिर्मलजीको बाबा एकान्त वार्ताके लिये अधिक-से-अधिक समय देते। श्रीनिर्मलजीके खान-पानके स्पर्शास्पर्श सम्बन्धी नियम बड़े ही कठोर थे। उन नियमोंके निर्वाहमें कभी भी तनिक बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबाका अत्यधिक ध्यान रहता। श्रीनिर्मलजीके भोजनकी व्यवस्था बहिन विमलाको सौंपकर बाबा निश्चिन्त थे और बहिन विमलाने बाबाके उस विश्वासमें कभी भी खरोंच लगने ही नहीं दी। श्रीनिर्मलजी बहुत दिनोंतक गीतावाटिकामें रहे। फिर वन्दनीया माँके पास वापस चले गये।

* * *

एक विचित्र संयोगकी बात लिख रहा हूँ। बाबा तथा माँ दोनों ही लकवासे ग्रस्त हुए। दोनोंके शरीरपर २० तारीखको लकवाका झटका आया और दोनोंके शरीरके दक्षिण अंग लकवासे प्रभावित हुए। ज्यों ही माँको बाबाके लकवा-ग्रस्त होनेकी सूचना मिली, त्यों ही एकदम चैतन्य होकर

'हरी-हरी-हरी' उच्चारण करने लगीं। फिर माँने आदेश दिया कि आज ही गीतावाटिका पत्र लिख दो – बाबाका शरीर खराब हो गया है। यह माँको ठीक नहीं लगा।

राधा बाबा, राधा बाबा, राधा बाबा, नमो नारायण, नमो नारायण, नमो नारायण।

* * *

बाबा कई बार कहा करते थे कि माँ भारतकी परमोच्च कोटिकी आध्यात्मिक विभूति हैं। बाबाको माँके दर्शन तीन बार हुए। इसके बारेमें बाबाने बताया – जब-जब माँके दर्शन हुए, तब-तब यही अनुभव हुआ कि मेरे सम्मुख साक्षात् भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजी विराजित होकर अपना पावन दर्शन दे रही हैं। तीनों बार एक ही जैसा दर्शन होना स्वयंमें एक बहुत बड़ी बात है। जिस दिव्य रूपमें दर्शन मिले, वह छवि आजतक हृदय-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है।

* * *

गीतावाटिकामें २६ अगस्त १९८२ को श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोत्साह मनाया गया और २८ अगस्त १९८२ को शोक समाचार मिला कि पूज्या श्रीआनन्दमयी माँ नहीं रहीं। ज्यों ही माँके निधनका समाचार मिला, बाबा एकदम अवसन्न हो गये। राधाष्टमी-महोत्सवका उल्लास बड़ा संकुचित-स्तंभित हो गया। सबके मनमें खिन्नताने घर कर लिया। बाबाने जब जल ही ग्रहण नहीं किया, तब भिक्षाका तो प्रश्न ही नहीं। २८ अगस्तके सारे दिन सारी रात बाबा निर्जल-निराहार रहे। दूसरे दिन २९ अगस्तके प्रातःकाल गंगाजल तो स्वीकार किया, पर ४४ घंटा निराहार रहनेके उपरान्त बाबा भिक्षाके आसनपर तब ही बैठे, जब वन्दनीया माँके पार्थिव शरीरका अन्तिम संस्कार कनखलमें हो गया।

बाबा तो श्रीआनन्दमयी माँकी गरिमाका वर्णन करते थकते ही नहीं थे। बाबाने एक बात और कही। माँका निधन हुआ था २८ अगस्तको। निधनके बारह दिन बाद ९ सितम्बरको माँ अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाके पास पधारीं तथा परस्परमें संलाप भी हुआ।

* * * * *

विरहिणी बहिन कुमुद

एक पंजाबी बहिनका इतिवृत्त सुनकर बाबा बड़े द्रवित हुए थे। इस बहिनका नाम था कुमुद। इसका जन्म पंजाबके मुलतान शहरमें हुआ था। जब इसके माता-पिता मुलतानमें रहते थे, तब तो पंजाबका दौरा करते समय पं.श्रीजवाहरलालजी नेहरू इनकी कोठीपर ठहरे थे। जब कुमुदकी आयु छोटी थी, तभी वह अपने माता-पिताके साथ बम्बई आ गयी थी। जब यह सात वर्षकी थी, तभी इसके पिताजीका देहान्त हो गया था। इसके एक भाई था, जो इससे दो वर्ष बड़ा था। भाईकी धार्मिक पुस्तकोंमें बड़ी रुचि थी। वह प्रायः गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंको तथा धार्मिक पत्रिका 'कल्याण'के अंकोंको बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ा करता था। उन्हीं पुस्तकोंको तथा कल्याण-पत्रिकाको कुमुद भी चावपूर्वक पढ़ा करती थी। जब कुमुदकी आयु लगभग पन्द्रह वर्षकी थी, तब वृन्दावनसे श्रीहरगोविन्दजीकी रास-मण्डली बम्बई गयी हुई थी। उस रासलीलाको देखनेके लिये ये दोनों भाई-बहिन जाया करते थे। उस रासलीलाका कुमुदके कोमल मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति-भावनामें उसका मन बहने लगा। यह भाव-धारा और भी वेगवती हो गयी अपने भाईके वियोगसे। एक दिन समुद्र-स्नान करते समय समुद्रकी लहरें उसके भाईको बहा ले गयीं। भाईके आकस्मिक वियोगने कुमुदके अन्तरमें संसारके प्रति आत्यन्तिक विरक्ति भर दी। घोर उदासी और प्रबल निराशाकी स्थितिमें उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। उसे कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। संसारकी असारताको देखकर वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंपर सर्व समर्पित कर देनेका लौल्य उसके मनमें जाग उठा। महावियोगिनी प्रेमयोगिनी मतवाली मीराके भावोंके अनुसार, बस, एक ही बात कुमुदके मनमें रह गयी थी –

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

इस समय बहिन कुमुदकी आयु लगभग उन्नीस वर्षकी होगी। इन दिनों कुमुदके मनकी केवल एक ही पुकार थी कि मैं वृन्दावन कब पहुँचूँगी। एक दिन कुमुदने अपनी माँसे कहा – माँ! तू मुझे वृन्दावन ले चल।

माँके सामने अनेक सांसारिक विवशताएँ थीं। जब माँने अपनी कुछ पारिवारिक उलझनों तथा कुछ जागतिक रुकावटोंका बयान किया तो कुमुदने अति खिन्न मनसे अपनी माँसे कहा – क्या तू यही चाहती है कि मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँ?

विवश होकर माँ कुमुदको लेकर वृन्दावन आयी। वृन्दावन आकर माँ-बेटी पहले एक धर्मशालामें ठहरीं। फिर एक पंजाबी सद्गृहस्थके घरमें कमरा किरायेपर लेकर रहने लग गयीं। किसी कारणसे माँको वापस बम्बई जाना पड़ा तो माँ कुमुदकी सँभालका भार उन सद्गृहस्थ पंजाबीजनपर छोड़ गयी।

उधर माँ तो बम्बई गयी और इधर श्रीकृष्ण-विरहसे व्यथिता भक्तिमती कुमुदकी दशा कुछ और ही थी। व्यथाके अतिरेकमें कुमुद क्या-क्या करती थी, यह तो कुमुद ही जाने, पर उसके परिचितोंने इतना अवश्य देखा कि वह एक बड़ी मटकी लेकर यमुना-स्नानके लिये जाती, स्नान करनेके बाद मटकीको यमुना-जलसे भरकर अपने सिरपर रख लेती और घरकी ओर वापस आते समय रास्तेभर यही कहती – क्या नन्दलाल! मेरी मटकी फोड़ने नहीं आओगे?

किसीको सुनानेके लिये नहीं, प्रबल भावोंका वेग जब सीमाका अतिक्रमण करने लगता था, तब वह गाने लगती थी –

जन्म जन्म के बिछड़े साथी साथ निभाओ।
जीवन के अँधियारे पथ पर दीप जलाओ।।
जैसे तैसे भूले भटके ही आ जाओ।
अंत समय है और मुझे अब मत तरसाओ।।

उसको भोजन करनेकी फुरसत भला कहाँ? कच्चे आटेको पानीमें घोलकर वह पी लेती। एक बार उस कमरेमें रहते समय कुमुद बहुत बीमार हो गयी तो एक दूसरी संतसेवी श्रद्धालु बहिन उसका उपचार करनेके लिये उसे अपने घरपर ले आयी। इन्हीं दिनों 'कल्याण' पत्रिकामें बाबा द्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण- लीला-चिन्तन' क्रमशः धारावाहिक रूपसे प्रकाशित होता था। कल्याण-पत्रिकामें वह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'को पढ़ते-पढ़ते अघाती नहीं थी। इसके वाचनसे उसकी भक्ति-भावना अत्यन्त उद्दीप्त हो उठती थी। इसके अतिरिक्त बाबूजीके पत्रोंको पढ़नेमें उसकी रुचि थी। 'कामके पत्र' शीर्षक

स्तम्भके अन्तर्गत बाबूजीके पत्र 'कल्याण' पत्रिकामें प्रायः छपा करते थे। इससे उसको बड़ा अवलम्ब मिलता था। यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' और ये पत्र कुमुदके प्राणोंकी निधि थे। दिनके समय कुमुद लाल स्याहीसे कॉपीमें 'राधा-राधा' लिखा करती थी। सन्ध्याके समय वह लहँगा पहिनकर अपने ठाकुरजीके सामने नाचा करती थी। वह नाच-नाच करके अपने ठाकुरको रिझाया करती थी। उसका कण्ठ बड़ा मधुर और ललित था। वह पदोंको गा-गा करके अपने ठाकुरको सुनाया करती, केवल अपने ठाकुरको। उसके जीवनका सारा माधुर्य और सारा लालित्य अब एक मात्र जीवनधन प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दरके लिये था। अन्य अवसरपर वह कभी गीत गाती नहीं थी, मनुहार करनेपर भी वह मौन ही रहती। उसका व्रत था कि यदि सुनाना है तो केवल अपने ठाकुरको ही। जब वह भावभरे मनसे अपने ठाकुरजीको पद सुनाया करती थी तो उसके निकटवर्ती जन भी छिप-छिप करके उसके पदोंको सुना करते थे। उसका सबसे प्रिय पद था –

गोबरधनवासी साँमरे तुम बिन रह्यौ न जाय हो।
ब्रजराज लड़ैते लाड़िले।।
बंक चितै मुसिकाय के लाल सुंदर बदन दिखाय हो।
लोचन तलफें मीन ज्यों पल छिन कल्प बिहाय हो।।

श्रीचतुर्भुजदासजीद्वारा रचित इस पदमें छब्बीस पंक्तियाँ हैं और इस एक पदको वह तीन-चार घंटेमें पूरा कर पाती थी। कई बार मकानकी छतपर खड़ी होकर वह पगली कुमुद निर्लज्ज होकर पुकारने लगती थी – प्रियतम! तुम कब आओगे?

इस पागल पुकारकी कोई सीमा तो थी नहीं। मतवाली मीराके समान उसकी एक ही अकुलाहट थी, एक ही छटपटाहट थी, एक ही अनुरोध था, एक ही अभिलाषा थी –

प्यारे दरसन दीज्यो आय।
तुम बिन रह्यो न जाय।।
जल बिन कमल चंद बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
आकुल ब्याकुल फिरूँ रैन दिन,

बिरह कलेजौ खाय।
प्यारे दरसन दीज्यो आय।।

प्रीतम बोलो कब आवोगे?
कब वीणाकी झंकारों पर बन अमर गीत छा जावोगे?

यह एक ऐसी आग है, जो बुझाये बुझती नहीं; एक ऐसा रोग है, जो मिटाये मिटता नहीं और उस रोगीको कितना ही समझाओ, वह समझाये समझता नहीं। उस विरहिणी कुमुदकी, बस, एक ही आह थी और एक ही आवाज थी –

कब होगा हमसे प्यार सखी।
मेरी वीणा है मूक पड़ी, सोये हैं इसके तार सखी,
पर कभी झनक ही उठती है, ले बजनेका अधिकार सखी,
मेरी इस नीरव वीणाकी, है यही मूक झंकार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी।।

क्या शान्त कभी होगी मेरी, दुख दर्द भरी हुंकार सखी,
क्या शीतल फिर हो पायेंगे, मेरे मनके अंगार सखी,
क्या लुप्त शून्यमें ही होंगे, आकुल उरके उद्‌गार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी।।

आ दीन दशा देखे मेरी, वह प्रीतम प्राणाधार सखी,
आ स्वयं आप वह कर जाये, इस पीड़ाका उपचार सखी,
दुखिया प्राणोंका सम्बल वह, है जीवनका शृंगार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी।।

रोदन ही बहिन कुमुदका जीवन था, विकल अश्रुधारा ही उसकी सहेली थी और 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' का सदा वाचन ही उसके लिये सान्त्वनाका स्रोत था। इन्हीं आँसुओंसे भीगे-भीगे उसके दिन कट रहे थे कि एक दिन उसकी माँ बम्बईसे आयी उसे बम्बई लिवा जानेके लिये। माँने कहींपर कुमुदके सम्बन्धकी बात तय कर ली थी। लड़की सयानी हो गयी है, अतः विवाह कर देना उचित है। कन्याके दायित्वसे मुक्त होनेके लिये ही वह कुमुदको अपने साथ बम्बई ले गयी। न चाहते हुए भी माँके अनुशासनपर कुमुदको बम्बई जाना पड़ा। बम्बई जानेसे पहले कुमुदने उस संतसेवी श्रद्धालु बहिनसे कहा – जिस तरह

तुमने मेरी इतनी सँभाल की, बस, वैसे ही तुम मेरा एक काम और कर देना। कल्याण-पत्रिकामें क्रमशः छपनेवाला यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब कभी भी भविष्यमें पुस्तकाकार छपे, तब उसकी एक प्रति मेरे पास अवश्य भेज देना। अवश्य-अवश्य भेज देना।

कुमुदने जाते-जाते इस अनुरोधको दो बार या चार बार नहीं, आठ-दस बार नहीं, कम-से-कम बीच-पच्चीस बार दोहराया होगा। बम्बई पहुँचनेपर कुमुदकी चाहके विरुद्ध उसकी माँने उसका विवाह कर दिया। जिस नये घरमें कुमुदने बहूके रूपमें प्रवेश किया, वहाँका वातावरण सर्वथा अनुकूल नहीं था। उस प्रतिकूल वातावरणमें उसका दम अत्यधिक घुटने लगा और क्या ही दुर्भाग्यकी बात! उस विकट प्रतिकूलताकी भीषण ज्वालामें एक दिन अति विकला कुमुदका जीवन आहुति बन गया। विवाहके बाद वह ससुरालमें अधिक दिन नहीं जी पायी। थोड़े दिनोंके बाद ही वह संसारसे विदा हो गयी। इस दारुण शोक समाचारको सुनकर कुमुदकी माँ तो चीख मारकर रो पड़ी। माँके मनमें बड़ी कसक थी कि मैं उसको वृन्दावनसे वापस क्यों लायी? कुमुदके निधनके बाद उसकी माँ पागलिनीकी भाँति उस श्रद्धालु बहिनके पास वृन्दावन आयी और रो-रो करके कहने लगी – कुमुद गयी, कुमुद चली गयी, कुमुद सदाके लिये संसारसे चली गयी।

वह श्रद्धालु बहिन तो सुनकर अवाक् रह गयी। कुमुदके दिव्य भविष्यके बारेमें उसने कितनी सुहावनी कल्पनाएँ सजा रखी थीं, इसे सुनते ही वे सब-की-सब ढह गयीं। 'बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।' कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि कब क्या हो जायेगा।

बहिन कुमुदके विदा हो जानेके कुछ वर्ष बाद 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पुस्तकाकार छपकर तैयार हुआ तो वह श्रद्धालु बहिन उस ग्रन्थको पढ़कर सुनाती और कुमुदकी दिवंगत आत्मासे कहती – तू जहाँ भी हो, इसे सुन ले।

उन श्रद्धालु संतसेवी बहिनसे वृन्दावनमें मैंने जब बहिन कुमुदका यह करुण वृत्त सुना तो सचमुच मेरा तन-मन सिहर उठा। मैं अपने भावोंका संवरण नहीं कर पाया और यह वृत्त मैंने बाबाको सुनाया। मैंने सन् १९८३ ई. के मई मासमें बाबाको सुनाया था। बहिन

कुमुदके संक्षिप्त परिचयको सुनते समय बाबाके नेत्र कई बार सजल हुए। वे कई बार पुलकित हुए। बाबाका मन रह-रह करके द्रवित हो रहा था। कुमुदकी भक्ति-भावनाको देखकर बाबाको आह्लाद हो रहा था, पर असमयमें ही उसके चले जानेसे बाबाको खिन्नता भी कम नहीं हो रही थी। बाबाके अन्तरमें हर्ष और विषाद, दोनों ही हो रहे थे। इस सारे वृत्तको सुनकर बहिन कुमुदके बारेमें बाबा कहने लगे – निश्चित ही वह भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी होगी। अब प्रश्न है यह कि उसकी इच्छाकी पूर्ति कैसे हो? अब उसको पुस्तक कैसे दी जाये?

मैं बाबाके भावोंको अपनी मूर्खताको कारण समझ नहीं पाया और एक अनाड़ीकी भाँति मैं बोल उठा – जब वह चली गयी, तब भला उसे कैसे दी जा सकती है?

फिर बाबाने कहा – उसके निमित्तसे किसीको मैं दे दूँ तो कैसी बात रहे?

मैंने तुरंत इसका अनुमोदन किया और तभी यह निश्चित हो गया कि आगामी १५ मईको अक्षय तीज है, इसी अक्षय तीजके दिन 'श्रीकृष्ण-लीला- चिन्तन'की एक प्रति विमला बहिनको दे दी जाये। बहिन विमला विप्र-कुलोद्भवा है और इसके अतिरिक्त परम भक्त-हृदया है।

अक्षय तीजके प्रातःकालकी बात है। परिक्रमा होनेमें अभी कुछ विलम्ब था। बाबाने भगतजीसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' की एक प्रति मँगवायी। संयोगकी बात, यह वही प्रति थी, जो बाबाके उपयोगमें आया करती थी। बाबाने बहिन विमलाको बुलवाया। बहिन विमलाको तनिक भी पूर्व-जानकारी नहीं थी कि बाबा मुझे क्यों बुला रहे हैं। उस समय बाबाके पास कुल चार-पाँच व्यक्ति खड़े थे। बाबाने वह प्रति अपने हाथमें लेकर दिवंगत कुमुदका अत्यधिक संक्षिप्त परिचय दिया – एक बहिन थी। उसका मन श्रीकृष्ण-भक्तिसे परिपूर्ण था। उसकी इच्छा थी कि जब 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तकके रूपमें छप जाये तो उस पुस्तकको प्राप्त करूँ। पहले यह कल्याण-पत्रिकामें क्रमशः छपा करता था। इसके पुस्तकाकार छपनेके बहुत पहले ही वह बहिन कुमुद इस भूतलसे विदा हो गयी। उसीके निमित्तसे यह पुस्तक मैं तुमको दे रहा हूँ।

बहिन विमलाने अपना आँचल फैला दिया। अपने हाथसे बाबाने उसके आँचलमें दे दिया। देते समय बाबा बड़े विभोर हो रहे थे। बाबाने विभोर स्वरमें कहा – इस पुस्तकसे तेरा अशेष मंगल होगा और तेरे माध्यमसे उस बहिन कुमुदका भी अशेष मंगल होगा।

बाबाके नेत्र तो सजल थे ही, बहिन विमलाकी आँखें तो और भी अधिक भरी हुई थीं। उस पुस्तकको अपने आँचलमें सँभालते-समेटते हुए बहिन विमलाने याचना की – बाबा! आप आशीर्वाद दें कि भगवान् श्रीकृष्णमें अहैतुकी प्रीति हो।

ऐसा कहते-कहते बहिन विमला अत्यधिक विह्वल हो रही थी। जिसके निमित्तसे ग्रन्थ दिया जा रहा था, उसके कारण बाबा विभोर थे ही, निर्मल हृदया विमलाकी निश्छल विह्वलताने बाबाके भावोंको और भी उद्वेलित कर दिया। बाबाने प्रसन्न वाणीमें कहा – होगी, अवश्य होगी। बेटी! मुझको तुमपर गौरव है। तुम्हारा हृदय जैसा सुन्दर है और तुम्हारा जीवन जैसा सात्त्विक है, वह मेरे लिये गौरवकी वस्तु है।

जिस समय बाबाने पुस्तक प्रदान की, उस समय सारा वातावरण इतना गम्भीर, इतना भावपूर्ण, इतना संवेदनशील हो गया कि क्या कहा जाये? मैं तो वहीं था, खड़े-खड़े सब देख रहा था। देखते-ही-देखते वातावरणका रंग-ढंग कुछ लोकोत्तर हो गया था। उस भाव-भीने वातावरणमें बहिन विमलाने भूमिपर माथा टेककर बाबाको प्रणाम किया। सबने मन-ही-मन बहिन विमलाके भाग्यकी सराहना की कि इसे अक्षय तीजके दिन बाबाने ऐसा अमोघ आशीर्वाद दिया तथा अक्षय तीजके दिन बाबाके हाथसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तक मिली। 'एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं'।

* * * * *

मन्दिर की मूर्तियों का चयन

गीतावाटिकामें श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिरके निर्माणका कार्य चल रहा था। हम सभी लोगोंकी चाह ऐसी रही कि सन् १९८४ ई.की श्रीराधाष्टमीके अवसरपर मन्दिरमें श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा हो जाये। अब प्रश्न था श्रेष्ठ और सुन्दर श्रीविग्रहोंके चयनका। मूर्तियोंकी शिल्पकलाकी दृष्टिसे जयपुरकी ख्याति बहुत अधिक है। बाबाकी ऐसी अभिलाषा थी कि मन्दिरमें जो श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हों, वे कैशोर्य-लावण्यकी आभासे मण्डित हों और ऐसी मूर्तियोंके चयनके लिये यदि श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे जयपुरकी यात्राका कष्ट उठा सकें तो अति सुन्दर हो।

बाबाने वृन्दावन पत्र भेजनेके स्थानपर मुझे ही वृन्दावन भेजा और श्रीमहाराजजीके लिये संदेश दिया – पत्रके रूपमें स्वयं बंकाजीको ही भेज रहा हूँ। यदि आप अस्वस्थ हों तब तो मुझे कुछ भी कहना ही नहीं है, पर यदि आपका स्वास्थ्य आपको अनुमति दे तो एक अनुरोध है। यदि आप जयपुर पधारनेका कष्ट कर सकें तो बड़ी कृपा होगी, जिससे श्रीराधाकृष्णकी किशोर आभायुक्त मूर्तिका सुन्दर चयन हो सके। मुझे आपकी 'आँखों' पर विश्वास है, इसीलिये ऐसा अनुरोध है। उनकी किशोर-कान्तिकी ओर संकेत करते हुए श्रीविल्वमंगलजीने श्रीकृष्णकर्णामृतमें कहा है –

तत्कैशोरं तच्च वक्त्रारविन्दं तत्कारुण्यं ते च लीलाकटाक्षाः।
तत्सौन्दर्यं सा च सान्द्रस्मितश्रीः सत्यं सत्यं दुर्लभं दैवतेऽपि।।

मूर्ति ऐसी हो, जिसमें इस प्रकारकी किशोर-कान्तिकी भावनाका प्राबल्य हो।

मैं ११ नवम्बरको वृन्दावन पहुँचा। प्रणाम करनेके पश्चात् महाराजजीके समक्ष बाबाका संदेश मैंने निवेदित कर दिया। एक ओर मैं संदेशका निवेदन कर रहा था, पर दूसरी ओर मैं संदेहसे ग्रस्त भी हो रहा था। महाराजजी सर्दी-ज्वरादिसे पीड़ित थे, अतः मेरे मनमें दुविधाका उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि पता नहीं महाराजजी जयपुर जायेंगे अथवा नहीं। अगले दिन १२ नवम्बरको महाराजजीने जयपुर जानेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी कि वे १५ नवम्बरको

चलेंगे। इसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

महाराजजी १५ नवम्बरको जयपुर पधारे तथा श्रीराधाकृष्णकी किशोर-आभायुक्त मूर्तिके निर्माणके लिये आवश्यक निर्देश शिल्पकारको देकर १६ नवम्बरको वृन्दावन वापस आ गये। वृन्दावनसे लौटकर जब मैं गोरखपुर आया तो बाबाने सारा विवरण सुना। जब बाबाको यह ज्ञात हुआ कि महाराजजी अपनी अस्वस्थताके बाद भी यात्राका कष्ट उठाकर जयपुर गये तो बाबाका मन भर आया तथा उच्च स्वरसे पुकारते हुए उनका अभिनन्दन-अभिवन्दन करने लगे।

शिल्पकारको मूर्तिकी सम्यक् कल्पना प्रदान करनेके लिये महाराजजीने भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र स्वयं बनाया था। वे तो भगवती श्रीराधाका भी चित्र अङ्कित करना चाहते थे, परंतु समयाभावके कारण कर नहीं पाये। वह चित्र बाबाको दिखलानेके लिये मैं अपने साथ ले आया था।

महाराजजी द्वारा चित्रित भगवान् श्रीकृष्णकी छवि बाबाको दिखलानेके लिये मैं जब चित्रको खोलने लगा तो बाबाको आश्चर्य हुआ कि क्या महाराजजी चित्र बनाना भी जानते हैं। बाबाने उस चित्रको खोलनेसे पहले अपने मस्तकपर धारण किया। लगभग साढ़े-पाँच फीट लम्बे और तीन फीट चौड़े चित्रको खोलकर जब मैंने दिखलाया तो बाबा चित्रांकनकी सराहना करने लगे और उन्होंने उस छविको प्रणाम किया। बाबा बार-बार महाराजजीकी अँगुलियोंकी कलाकी सराहना कर रहे थे।

मैंने बाबासे कहा – आपका संदेश मिलनेके बाद महाराजजी मूर्तियोंकी मुद्राओंके बारेमें चिन्तन करने लगे। महाराजजी यही चाह रहे थे कि बाबाकी कोमल एवं कान्त भावनाओंके अनुरूप ही मूर्तियोंका निर्माण हो। महाराजजी तो यहाँतक सोचने लग गये कि मूर्तियोंकी मुद्राओंके बारेमें बाबासे विचार-विनिमय करनेके लिये मैं हवाईजहाजसे गोरखपुर चला जाऊँ और फिर तुरंत हवाईजहाजसे जयपुर पहुँच जाऊँ।

यह सुनकर विभोर वाणीमें बाबा कहने लगे – किसीकी रुचिके साँचेमें इस प्रकार स्वयंको ढाल देना, बस, महाराजजी जानते हैं। महाराजजी तो महाराजजी ही हैं। गीतावाटिकाके अन्दर जो मन्दिर बन रहा है, उस मन्दिरके इतिहासमें महाराजजीका यह भावात्मक योगदान

और जयपुर पधारकर प्रत्यक्ष योगदान, यह सभी कुछ अप्रतिम है। निर्मित होनेवाले मन्दिरका एवं गीतावाटिकाका यह सौभाग्य है कि महाराजजीका ऐसा सहयोग मिला।

मैंने बाबासे फिर निवेदन किया – चिन्तन एवं पारस्परिक विचार- विनिमयके बाद महाराजजीने यही निश्चित किया कि जिन बाबूजीकी गरिमामयी सिद्धस्थलीपर यह मन्दिर बन रहा है, उनकी रसमयी भावनाओंको ध्यानमें रखते हुए यही उचित होगा कि वंशीवादन-रत श्रीकृष्णके पार्श्वमें प्रसन्न-वदना महाभावमयी श्रीराधा विराजित रहें। यही छवि जयपुरके शिल्पकारको बतला दी गयी।

बाबा कहने लगे – श्रीमहाराजजीकी 'आँख' पर, उनके 'मापदण्ड'पर मेरा विश्वास है। मेरे प्रतिनिधिके रूपमें श्रीमहाराजजी जयपुर पधारे थे। उन्होंने जो निर्णय दिया है, वह मेरा ही है।

* * * * *

अस्वस्थता

श्रीहलधर षष्ठी, २९-८-१९८३ के बादसे ही बाबाके स्वास्थ्यकी स्थिति गिरने लगी थी। जुकाम बिगड़ गया और ज्वर रहने लगा। शरीरमें दुर्बलता तो थी ही, इस विषम परिस्थितिमें प्राकृतिक-चिकित्सकके परामर्शके अनुसार बाबाने कई दिनोंका उपवास कर डाला। दुर्बलतामें और भी दुर्बलता बढ़ गयी और स्थिति गम्भीरतर हो उठी। फेफड़ोंमें बहुत कफ जमा हुआ था, कफके साथ-साथ वात और पित्त भी प्रकुपित हो उठे। तीव्र उदर शूल तथा खाँसीसे एक क्षण चैन नहीं मिल पाता था। रात बैठे-बैठे निकलती थी, कभी बैठना और कभी लेटना।

बाबाने ऐसा स्पष्ट कहा भी कि यह कष्ट किसी अन्यका है, जो मैंने अपने ऊपर ले लिया है। भले ही लिया हुआ कष्ट हो, पर उनकी अति रुग्ण स्थितिको देखना भी तो सह्य नहीं होता। व्यथित हृदयसे एक सज्जनने एक बार बाबासे कुछ निवेदन करनेका साहस किया तो बाबा कहने लगे – मेरे लिये जीवन और मृत्युका भेद

समाप्त हो चुका है। मैं तो जानेके लिये प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहता हूँ। स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, ये दोनों मेरे लिये समान अर्थ रखते हैं। 'उनकी' रुचि ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है।

ऐसी स्थितिमें भी प्रतिदिन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करनेके नियमका निर्वाह केवल इस रूपमें हो पाता था कि बाबाको कुर्सीपर बैठा करके कभी एक अथवा कभी तीन परिक्रमा करवा दी जाती। बहुत दिनोंसे ऐसा क्रम चल रहा था। इतना कष्ट होनेके बाद भी कुर्सीपर बैठे हुए बाबा जब परिक्रमामें आते थे तो पद-गायन-रत हरिवल्लभजीके साथ एक-दो बार आलापचारी करते ही थे। कई बार बाबा निर्देश भी करते थे कि अमुक लीला-पदका गायन करें। हरिवल्लभजी जब उस लीला-पदका गायन करते तो उस समय बाबाकी वह सरसता-सजलता-विवर्णता दर्शनीय होती।

इस भाव-दशाको देखकर महाराजजी तो विभोर हो उठते थे। एक ओर तो शरीरसे अतीत यह भाव-दशा और दूसरी ओर शरीरकी वह रुग्णावस्था, एक विचित्र विरोधाभास देखनेको मिलता। महाराजजी तो अनेक बार कहते – यदि कोई अन्य साधारण प्राणी होता तो वह रुग्णावस्थामें शय्यापरसे उठ ही नहीं पाता।

क्रमशः रुग्णताने और अधिक भीषण रूप धारण किया। अधिक ज्वर हो जानेसे दो-तीन दिन बेहोशी-सी रही। सन्निपातके भी लक्षण कुछ-कुछ दिखलायी देने लग गये। जब हृदय और नाड़ीकी गतिमें कुछ अधिक अनियमितता परिलक्षित होने लग गयी तो डाक्टरोंने निराशाभरे स्वरमें कह दिया कि किसी भी क्षण कुछ भी घटित हो सकता है।

इस वर्ष श्रीराधाष्टमी-महोत्सव १४ सितम्बरको था। सदाकी भाँति इस वर्ष भी श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। उत्सवके समय भी बाबा एवं माँ, दोनों ही अस्वस्थ थे। बाबाकी अस्वस्थताने तो अति भीषण रूप उत्सवके बाद धारण किया। उनकी अस्वस्थतासे सारी गीतावाटिका विकल थी। महाराजजी, जो उत्सवके निमित्तसे यहाँ पधारे थे, वे भी आतुर मनसे क्षण-क्षणपर बाबाके बारेमें पूछते रहते थे।

एक श्रद्धालु बहिनने विकलताभरी वाणीमें बाबासे अवसर पाकर कहा – आप अपना यह कष्ट मुझको दे दीजिये।

बाबाने कहा – हर एकके बसकी बात यह नहीं होती। किसी दूसरेका कष्ट एक सिद्ध संत ही ले सकता है।

२१ सितम्बरकी शामको मेडिकल कालेजके डाक्टर गुप्ताजी बाबाको देखनेके लिये आये। प्रणाम करके गुप्ताजी बाबाके पास बैठ गये। पासमें और भी कई लोग बैठे हुए थे। डा. गुप्ताजीको देखकर बाबाने सच्चर्चा आरम्भ कर दी।

बाबाने कहा – जब जीव भगवानकी ओर उन्मुख होता है, उसी क्षण उसके दिव्य जीवनकी यात्राका शुभारम्भ होता है। यदि वह भगवद्भजनमें निष्ठापूर्वक लगा रहे तो वह निष्ठा उसके जीवनमें उतरने लगती है। इसके बाद उस भजन-निष्ठ जीवनमें भगवत्कृपाके ऐसे-ऐसे अद्भुत चमत्कार उपस्थित होने लगते हैं कि वे मात्र अनुभवकी वस्तु रह जाते हैं। जीवनकी संध्या आनेके पहले जीवको किसी प्रकार भगवानसे प्रगाढ़ परिचय कर लेना चाहिये। फिर तो इस जीवनमें और जीवनके उस पार भी मंगल-ही-मंगल है।

बाबा कुछ और कहना चाहते थे कि डा. श्रीगुप्ताजीने पूछा – आपकी तबीयत कैसी है?

बाबाने ओजस्वी वाणीमें कहा – मेरी तबीयत? मेरी तबीयतकी बात तो मेरे हाथमें है। मैं जिस साँचेमें उसे ढालना चाहूँगा, उसी साँचेमें मेरी इच्छाके अनुसार तबीयतको ढल जाना पड़ेगा। तबीयत तो मेरी इच्छाकी अनुगामिनी है।

यह सुनकर सभी आश्चर्यमें डूब गये। एक ओर शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक है और दूसरी ओर शरीरसे अतीत मनका धरातल कुछ और ही है। यह तो ठीक है कि बाबाने किसीका कष्ट अपने ऊपर ले लिया है और वे शरीरसे परे हैं, पर हम साधारण प्राणी उस कष्टको देखकर व्यथित हो उठते थे।

बाबाका अखण्ड नियम था माँका प्रतिदिन दर्शन करनेका। अपनी अस्वस्थताके कारण माँके पास बाबा नहीं जा पाते तो माँ ही कुर्सीपर बैठकर बाबाके पास चली आतीं।

सन् १९८४ का श्रीराधाष्टमी महोत्सव

इस वर्ष श्रीराधाष्टमी ३ सितम्बरको थी। इस महोत्सवमें भाग लेनेके लिये पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराजका गीतावाटिकामें शुभागमन ३० अगस्त ८४ को हुआ। यद्यपि यह सूचना मिल चुकी थी कि महाराजजी अपराह्न कालमें पधारेंगे, इसके बाद भी बाबा तो प्रातःकालसे ही महाराजजीकी प्रतीक्षा करने लग गये। बाबाकी दृष्टि अनेक बार घड़ीपर गयी कि कब अढ़ाई बजेंगे। इतना ही नहीं, बाबाने अपने समीपस्थ लोगोंसे कई बार पूछा – महाराजजी आ गये क्या?

बाबाके निजी सेवक भगतजीने कहा – बाबा! अभी अढ़ाई कहाँ बजा है?

इस उत्सुकता-भरी प्रतीक्षाका एक विशेष हेतु था। इस बार दिल्लीमें महाराजजीके पेटमें पौरुष-ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) का आपरेशन दिनांक २१ मई ८४ को हुआ था। आपरेशनकी तिथिकी जानकारी होते ही बाबाने अपने निजी परिकर चोपड़ाजीको अपने प्रतिनिधिके रूपमें दिल्ली भेजा था। इस आपरेशनमें महाराजजीको अपार कष्ट हुआ। उस आपरेशनके बाद महाराजजीका बाबासे यह प्रथम मिलन था, अतः प्रतीक्षामें इस प्रकारकी उत्कटताका होना स्वाभाविक था। अपराह्न कालमें महाराजजी गीतावाटिका पधारे। महाराजजी ज्यों ही बाबाकी कुटियाकी ओर बढ़ने लगे, बाबाने उनको देख लिया। बाबा अपने आसनसे उठे और आगे बढ़कर महाराजजीका स्वागत किया। महाराजजीका हाथ अपने हाथमें लेकर बाबा गाने लगे – 'चरन कमल बन्दौं हरि राई'।

बाबाने यह पूरा पद गाया। रिमझिम वर्षा हो रही थी, इसके बाद भी महाराजजीका हाथ अपने हाथमें लिये हुए बाबा वहीं खड़े रहे। वर्षाको देखकर महाराजजीने बाबासे विनम्र आग्रह किया कुटियामें आसनपर विराजनेके लिये। बाबा अपने आसनपर बैठे, परंतु महाराजजीको एक उच्चासनपर बैठा चुकनेके बाद। बैठते ही बाबाने कहा – बड़ी आतुरतापूर्वक मैं आपकी राह देख रहा हूँ। प्रातःकालसे अबतक न जाने कितनी बार मुझे आपकी मधुर स्मृति हो आयी। आप कह सकते हैं कि यह संन्यासी अतिशयोक्ति कर रहा है, पर आप सच मानें, आपका शुभागमन होते ही इस गीतावाटिकाकी शोभा कुछ और ही हो जाती है।

अल्पना स्थली के पूजन के लिए अग्रसर श्रीराधाबाबा एवं श्रीमहाराजजी

राधाष्टमी के अवसर पर शोभायात्रा की शोभा बढाते : श्रीराधाबाबा एवं श्रीमहाराजजी

बाबाने महाराजजीसे स्वास्थ्यका समाचार पूछा। ठाकुर श्रीघनश्यामजीने संक्षेपमें बतलाया। सुनकर बाबा कहने लगे – इस बार तो आपको एक प्रकारसे नवीन जीवन ही मिला है। आपके आपरेशनके निश्चय और तिथिका समाचार मिलते ही मैंने चोपड़ाजीको आपके पास दिल्ली भेज दिया था।

ठाकुरजीने कहा – चोपड़ाजी नहीं, चोपड़ाजीके आवरणमें आप ही पधारे थे।

बाबा कहने लगे – विगत डेढ़ माससे मेरा शरीर विशेष रूपसे अस्वस्थ चल रहा है। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा भी केवल पाँच ही लगा पाता हूँ और वह भी कुर्सीपर बैठकर। इन दिनों आत्यन्तिक दुर्बलताकी अनुभूति होती रहती है, पर अब दुर्बलता कहाँ? आपके पधारते ही उल्लास और उत्साह लहराने लगा है।

बाबा तथा महाराजजीके बीच और भी बातें होती रहीं। बातचीतके बीचमें बाबाने कहा – जब कभी रातके एक-दो बजे मेरी नींद टूट जाती है और श्रीपोद्दार महाराजकी सामनेवाली समाधिको एकटक देखता हूँ तो उस समय विचित्र प्रकारकी अनुभूतियोंका द्वार खुल जाता है। उस समय निपट एकान्त होता है। मेरे पास कोई नहीं रहता, जिससे किसी प्रकारका व्यवधान उत्पन्न हो। उन एकान्त एवं शान्त क्षणोंमें समाधिका और उसके आस-पासके स्थानका जो दिव्य स्वरूप मेरे 'दृष्टिपथ' पर आता है, उसके बारेमें क्या बतलाऊँ? वह दृश्य जागतिक स्तरका होता ही नहीं। वह तो होता है सर्वथा दिव्य, सर्वथा अनुपम।

बातचीतके बाद बाबा स्वयं महाराजजीके साथ-साथ गये उस कुटियातक, जहाँ महाराजजीके निवासकी व्यवस्था है। वर्षाके कारण राहमें फिसलन बहुत ज्यादा थी, अतः बड़ा सँभल-सँभल कर चलना पड़ रहा था। कुटियामें पहुँचकर बाबाने उस पलंगको प्रणाम किया, जिसपर महाराजजी विश्राम करते थे। उस आसनपर महाराजजीको बैठा करके ही बाबा अपनी कुटियापर वापस आये।

३० अगस्तको चतुर्थी तिथिके दिन श्रीगणपति-पूजन, १ सितम्बरको षष्ठी तिथिके दिन श्रीललिता-जन्मोत्सव, ३ सितम्बरको अष्टमी तिथिके दिन श्रीराधा-जन्मोत्सव, ४ सितम्बरको नवमी तिथिके दिन

दधिकर्दमोत्सव, ५ सितम्बरको दशमी तिथिके दिन श्रीपोद्दारजी-भावार्चन-दिवस और ८ सितम्बरको त्रयोदशी तिथिके दिन षष्ठी-दिवसोत्सव यहाँ सोत्साह एवं सानन्द मनाया गया। वृन्दावनसे श्रीश्रीरामजी-श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली ३० अगस्तको यहाँ आ गयी थी, अतः पंडालमें रासलीला ३१ अगस्तसे आरम्भ हो गयी थी।

इस वर्ष यहाँ जो श्रीराधा-जन्मोत्सव मनाया गया, उसकी सबसे विशेष एवं सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि बाबा इस वर्ष उत्सवके पंडालमें भी पधारे थे। बाबूजीने सन् १९७१ के मार्च मासमें महाप्रस्थान किया था। इसके पहले सन् १९७० ई. में बाबूजीके साथ-साथ बाबा श्रीराधाष्टमी-उत्सवके पंडालमें आये थे। सन् १९७० के बाद सन् १९८४ में यह पहला अवसर था, जब बाबा पंडालमें आये हों।

अष्टमी तिथिके प्रातःकाल सूर्योदयके समय रासमण्डलीके द्वारा श्रीनिमाई-निताई-मिलन लीला प्रस्तुत की जा रही थी। महाराजजीके साथ-साथ बाबा पंडालमें पधारे तथा जबतक लीला होती रही, वे लीलाका दर्शन करते रहे। लीला सम्पन्न हो जानेके बाद बाबाने 'प्रसूति-गृह'का दर्शन किया। यह वही प्रसूति-गृह है, जहाँ मध्याह्नके समय भगवती श्रीराधाके प्रादुर्भावके उपरान्त नीराजन-अर्चन-सम्बन्धी विस्तृत पूजन-कृत्य सम्पन्न होते हैं। तदुपरान्त बाबाने मंचपर सजायी गयी झाँकीका दर्शन किया। इसके बाद प्रभातफेरी प्रारम्भ हुई। प्रभातफेरीमें बाबा और महाराजजी साथ-साथ चल रहे थे। बाबाको अपने बीचमें देखकर प्रभातफेरीमें भाग लेनेवाले भक्तोंके हृदयमें इतना अधिक उल्लास था, 'जनु उमगत आनँद अनुरागा'। सभीके हृदयमें अनुराग और आनन्द इतना अधिक उमड़ रहा था कि 'भए मगन सब देखनिहारे'। इस समय प्रत्येक भक्त अपनी उल्लासमयताके कारण दूसरोंके लिये एक दृश्य बन रहा था और वही भक्त द्रष्टा भी बना हुआ था दूसरोंकी उल्लासमयी छविका दर्शन करनेके लिये। इस उमंगभरी प्रभातफेरीमें आज जन-जन द्रष्टा और दृश्य युगपत् बना हुआ था। बाबा और महाराजजीको साथ लिये-लिये प्रभातफेरी हो रही थी।

राधिकारमण अम्बुजनयन नन्दनन्दन नाथ हे!
गोपिकाप्राण मन्मथमथन विश्वरञ्जन कृष्ण हे!!

उपर्युक्त दो पंक्तियोंके कीर्तनका गगनव्यापी तुमुल नाद जन-जनके आनन्दको अधिकाधिक संवर्धित कर रहा था। प्रेम और प्रमोदसे परिपूर्ण नर-नारी समुदाय आज 'परमानंद हरष उर भरहीं'। पुष्पवर्षाकी सीमा नहीं थी। तुमुल नाद और अतुल मोदमें निमग्न इस प्रभातफेरीकी छटा अद्‌भुत थी।

'देखत बनइ न जाइ बखानी'।

प्रभातफेरीके बाद श्रीगिरिराज परिक्रमाका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और इसके बाद सम्पन्न हुए सम्पूर्ण दिवसके अन्य कार्यक्रम। इस बार जो भी कार्यक्रम हुए, वे सभी इतने भावोद्दीपक तथा प्रभावोत्पादक थे कि उसका वर्णन सम्भव नहीं। ऐसा लगता था मानो बीजमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके सभी कार्यक्रमोंको 'जगा' दिया गया हो। भाव जगा देनेमें समर्थ इन चैतन्य कार्यक्रमोंका प्रभाव ऐसा था कि मन जागतिक धरातलसे सर्वथा दूर जाकर रस-सिन्धुकी लहरोंपर लहराने लगता था।

मध्याह्नके समय ११ बजकर ५६ मिनटपर भगवती श्रीराधाका आविर्भाव होते ही माँने नीराजन किया। माँके कर-पल्लवपर सुशोभित हो रहा था आरतीका थाल और उस आरतीके थालमें प्रज्वलित थीं ग्यारह वर्तिकाएँ। माँके पास खड़ी हुई बाई (सावित्रीबाई फोगला) पुष्पोंकी वर्षा कर रही थी। विपुल पुष्पवर्षा और उच्च घंटा-शंख-नादके मध्य 'आरति श्रीवृषभानुलली की' का मधुर गायन हो रहा था। नीराजनकी मनहारी छवि ऐसी न्यारी और इतनी प्यारी थी कि भक्तगण 'पाइ नयन फल होहिं सुखारी'। नीराजनके बाद महाराजजीने श्रीराधासुधानिधिके श्लोकोंसे स्तुति-गान किया। इसके बाद ठाकुर घनश्यामजीने गाया 'महारस पूरन प्रगट्यौ आनि'। इस पदके बाद दूसरा पद गाया 'चलो वृषभान गोप के द्वार'। पदके गायनमें साथ दे रहे थे श्रीहरिवल्लभजी, श्रीश्रीरामजी और श्रीफतेहकृष्णजी। इन दोनों पदोंके गायनमें सम्भवतः पौन घंटा लग गया होगा। इन पदोंका गायन करते समय ठाकुरजी, वे ठाकुरजी नहीं थे, जो प्रतिदिन हमलोगोंके साथ उठते-बैठते और हिलते-मिलते थे। उनके कलेवरमें कोई रंगभरी रसमयी प्रीतिपगी व्रजांगना समा गयी थी और वह व्रजांगना बड़े भावसे उमंगपूर्वक रसार्द्र स्वरमें गा रही थी उन मांगलिक पदोंको उनके कण्ठके माध्यमसे। वह उमंग सारे वातावरणपर छायी हुई थी। वातावरणका मादक प्रभाव ऐसा था कि सभी भावोन्मत्त हो रहे थे।

मेरे द्वारा एक अपराध घटित हो जायेगा, यदि मैं ऐसा कहूँ कि विगत कतिपय वर्षोंमें मनाये गये उत्सवोंकी अपेक्षा इस वर्षका उत्सव बहुत भव्य और बड़ा भावपूर्ण रहा। भगवदीय भावके राज्यमें तारतम्यकी स्थापना करना एक अपराध है और ऐसा अनुचित कार्य भला, मेरे द्वारा क्यों हो! बस, मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस वर्षका उत्सव रहा बड़ा सुन्दर, अतीव सुन्दर, सुन्दर-से-सुन्दर, सुन्दरातिसुन्दर!

* * * * *

बाबाके 'मिन्तर' श्रीठकुरीबाबू

सन् १९८४ में श्रीराधाष्टमी महोत्सव ३ सितम्बरको था। महोत्सवके कार्य कार्यक्रम सम्पन्न हो जानेके बाद महाराजजी गोरखपुरसे २४ सितम्बरको जाना चाहते थे, परंतु जा पाये २७ सितम्बरको। इसके पीछे भी एक अति सुन्दर एवं रोचक हेतु था। बाबूजीका जन्म-दिवसोत्सव २२ सितम्बरको था। जन्म-दिवसोत्सव मना लिये जानेके बाद महाराजजी चाहते थे २४ सितम्बरको वृन्दावनधामके लिये प्रस्थान करना। ठाकुर घनश्यामजीने इसके बारेमें बात चलायी १८ सितम्बरको। ठाकुरजीकी बात सुनकर बाबाने कहा – यदि तुम लोग नौ दिन और ठहर जाओ तो कैसा रहे? तुम लोग २४ सितम्बरको न जा करके २७ सितम्बरको वृन्दावनके लिये प्रस्थान करो। महाराजजीसे पूछ लो। यदि वे स्वीकार कर लें तो बड़ा अच्छा हो।

ठाकुरजीने बाबासे तुरंत कहा – तीन दिन और रुक जानेमें हमलोगोंको प्रसन्नता ही होगी। इससे आपका सांनिध्य तीन दिन और मिल जायेगा।

अब यह निश्चित हो गया कि महाराजजी २७ सितम्बरको वृन्दावनके लिये प्रस्थान करेंगे। २२ सितम्बरको बाबूजीका जन्म-दिवसोत्सव उत्साहपूर्वक मना लिया गया। इसके चार दिन बाद २६ सितम्बरको प्रातःकाल बाबाके पास नगरसे सूचना आयी कि भक्तहृदय वयोवृद्ध श्रीठकुरी बाबू जालानका देहान्त हो गया है।

श्रीठकुरी बाबूको बाबा प्यारकी भाषामें अपना लँगोटिया यार कहा करते थे। इतना ही नहीं, बहुत स्नेह उमड़नेपर अपना 'मिन्तर' (अर्थात् मित्र) कहा करते थे। वे रासलीलाके बड़े प्रेमी थे। सन् १९४९ के आस-पास जब श्रीघनश्यामजी रासमण्डलीमें ठाकुर स्वरूप बना करते थे, तब रासमण्डलीको श्रीठकुरी बाबूने अपने घरपर ठहराया था। उन्होंने रासमण्डलीको अपने यहाँ केवल ठहराया ही नहीं, अपितु बाबाकी इच्छाके अनुसार अपनी बगीचीमें रासलीला करवायी भी। श्रीठकुरी बाबूका ठाकुर घनश्यामजीके प्रति वात्सल्य-भाव था। वे ठाकुर घनश्यामजीको पुत्रवत् प्यार किया करते थे और लाड-चावमें उन्हें लाला कहा करते थे। जब-जब ठाकुरजी मिलते, तब-तब श्रीठकुरी बाबू उनसे कहा करते थे — लाला! जब मेरा शरीर पूरा हो तो तुम भी उपस्थित रहना और कन्धा देना।

श्रीठकुरी बाबूकी ऐसी अभिलाषा और श्रीठाकुरजीसे ऐसा अनुरोध, यह भला कैसे सम्भव है? श्रीठाकुरजीका निवास वृन्दावनमें और फिर स्थान-स्थानपर उनका आना-जाना होता रहता है। इस कठिनाईको सोचकर श्रीठाकुरजी अपने बचावके लिये श्रीठकुरी बाबूको उत्तर दिया करते थे— आपका कहना तो ठीक है, परन्तु इसके बारेमें आपके 'मिन्तरजी' (अर्थात पूज्य बाबा) जाने कि मैं उस समय आपके पास रह पाऊँगा या नहीं। वे चाहेंगे तो ऐसा होना भला कौन-सी बड़ी बात है?

ज्यों ही श्रीठकुरी बाबूके निधनका समाचार गीतावाटिकामें आया, त्यों ही एक विचित्र-सी बात हम सभीके मनमें कौंध गयी कि क्या अपने लँगोटिया यार श्रीठकुरी बाबूकी उस चाहको पूर्ण करनेके लिये पूज्य बाबाने मन-ही-मन योजना बना ली थी और उस योजनाके अनुसार श्रीठाकुरजीको २७ सितम्बर तकके लिये रोक लिया, जिससे वे ठकुरी बाबूकी अर्थीको अपना कन्धा दे सकें। इस तथ्यपर जितना अधिक चिन्तन होता, उतना ही अधिक विस्मय होता उनकी समर्थ योजनापर।

श्रीठकुरी बाबूके शवका अग्नि-संस्कार अयोध्या धाममें श्रीसरयूजीके तटपर होनेवाला था। अयोध्या जानेके पूर्व उनके विमानको गीतावाटिका लाया गया और पूज्य बाबूजीके समाधिके पास रखा गया। रुग्ण होते हुए भी बाबा विमानके पास आये और उसका पुष्प एवं पुष्पमालासे शृंगार किया। शृंगारोपरान्त अभिमन्त्रित गंगाजलसे अभिषिक्त करके उन्होंने विमानकी तीन परिक्रमा लगायी। फिर बाबाने कन्धा दिया और कन्धा दिया श्रीठाकुरजीने भी। फिर अन्य लोगोंने वह अर्थी अपने कन्धेपर ले ली। वे लोग अर्थी लेकर पचास-साठ कदम बढ़े ही होंगे कि बाबाने ठहरनेके लिये कहा। बाबाने पुनः कन्धा दिया। बाबा कन्धा दिये-दिये गीतावाटिकाके

प्रवेश द्वारतक आये और फिर दूसरोंको अर्थी सँभला करके उन्होंने सभीके सामने पुकार करके कहा— मिन्तर ! वाटिकाके अन्तिम छोरपर खड़े होकर मैं तुम्हें अन्तिम विदाई दे रहा हूँ।

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तने अपने काव्यमें एक स्थानपर भगवान श्रीकृष्णके लिये लिखा है— 'करते सभी हो कार्य, पर कारण कभी बनते नहीं'।

बाबाने उस समय महाराजजी तथा ठाकुरजीको अकारण ही रोक लिया था, पर कंधा देनेका कार्य हो जानेके बाद लोगोंका चिन्तन सक्रिय होकर उस अकारणके प्रच्छन्न कारणका अनुमान लगाने लगा। कार्य सिद्ध हो गया और श्रीठकुरी बाबूकी इच्छा भी पूर्ण हो गयी, पर बाबाने आदिसे अन्ततक स्वयंको छिपाये रखा। स्वयंको सर्वथा अव्यक्त रखते हुए बाबाने दो स्नेही-जनोंके स्नेह-सम्बन्धका निर्वाह कितनी सुन्दर रीतिसे करवा दिया।

इन दिनों यह तथ्य हमलोगोंकी सरस चर्चाका विषय बना रहा। यदि मनमें धैर्य रहे तथा आँखें खुली रहें तो बहुतसे तथ्योंके रहस्य स्वतः सामने आ जाया करते हैं और तथ्योंका यह रहस्योद्घाटन हृदयको सद्भावसे परिपूरित कर दिया करता है। फिर महाराजजी, ठाकुरजी आदिने २७ सितम्बरको गोरखपुरसे प्रस्थान किया।

* * * * *

दो अष्टयाम-लीलाएँ

गीतावाटिकामें अष्टयाम लीला दो बार हुई, पहली लीला सन् १९८२ में और दूसरी लीला सन् १९८४ में हुई। प्रथम लीलाके दर्शनके लिये दिनांक १३ मार्च १९८२ को श्रीमहाराजजी गीतावाटिका पधारे। पूर्व-निश्चित योजनाके अनुसार गीतावाटिकामें १४ मार्चसे लेकर २१ मार्चतक अष्टयामलीला अभिनीत होनेवाली थी। इस अवसरपर पधारनेके लिये बाबाने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया था, यही हेतु था महाराजजीके पधारनेका। महाराजजीके आनेपर बाबाने कहा था— आप मेरा अनुरोध स्वीकार कर लेते हैं, यह आपकी गरिमा है तथा इस वाटिकाका सौभाग्य है। अतिशयोक्तिपूर्वक नहीं, मैं वस्तुतः सत्य कह रहा हूँ कि आपका शुभागमन इस गीतावाटिकाको पवित्रता प्रदान करता है।

बाबाको सुख प्रदान करनेकी भावनासे ही यह अष्टयामलीला आयोजित हुई थी, किंतु कभी-कभी हमलोगोंके मनमें एक संदेह उठ जाया करता था कि बाबा इस लीलामें बैठ पायेंगे अथवा नहीं। उनके कठोर नियमोंके कारण ही यह संदेह उत्पन्न होता था, परंतु यह संदेह सर्वथा निराधार निकला। बाबा प्रतिदिन ठीक

समयसे पहुँचते। बाबा तो अपना संदेशवाहक भेजकर ठाकुरजीसे नित्य ही पुछवाया करते थे– ठाकुर! इस अष्टयामलीलाका एक दर्शक मैं भी हूँ। बताओ, आजकी लीला कितने बजे आरम्भ होगी?

बाबाका यह दैन्य ठाकुरजीको और भी विगलित कर दिया करता था। हम दर्शक लोग मंचपर निकुञ्ज-लीलाका दर्शन करते ही थे, इसके साथ ही देख लिया करते थे कभी-कभी आँखोंके कोनोंसे बाबाको, महाराजजीको और माँको। अस्वस्थ होते हुए भी माँ प्रतिदिन तीन-साढ़े-तीन घंटे बैठकर लीलाका दर्शन किया करती थीं।

माँने अपने आह्लादपर सघन गम्भीरताका आवरण डाल रखा था, अतः उनके आह्लादका परिज्ञान होता था लीला-दर्शनके समय नहीं, लीलाके उपरान्त, जब वे लीलाकी सुन्दरताकी चर्चा अपने कमरेमें समीपस्थ महिलाओंसे किया करती थीं।

महाराजजीकी भावमयताके दर्शन तो कई बार होते थे। नेत्रोंकी सजलताके कारण न जाने कितनी बार उन्हें अपनी श्वेत चादरका छोर अपने हाथोंमें लेना पड़ता था।

बाबा तो लीलामें बैठते थे एक आसनसे और आरम्भसे अन्ततक मौन रहते। जब भी मंचपर कोई भावपूर्ण दृश्य आता, उसे देखते ही बाबा ध्यानस्थ हो जाते। बहुत देरतक नेत्र बन्द किये हुए निस्स्पन्द बैठे रहते। लीलाके पूरी होनेके बाद भी बाबा बोलनेकी स्थितिमें नहीं रहते। ठाकुर घनश्यामजी, डॉ. एल.डी. सिंह, श्रीचोपड़ाजी आदि बाबाको सहारा देकर धीरे-धीरे ले जाते और उन्हें मच्छरदानीके अन्दर सुला देते। कभी-कभी तो बाबा इस भाव-निमग्नतामें घंटों पड़े रहते। इस समय किसीका भी बोलना, किसीके भी पद-चापका ध्वनित होना, किसी बर्तनका रंच मात्र टकराना, यह सब बाबाको तनिक भी सुहाता नहीं था। परिचर्या-रत परिकर-वर्ग इस दृष्टिसे सावधान भी रहता था।

अब मैं अपने विश्वासकी एक बात लिख रहा हूँ। इस अष्टयामलीलामें अभिनयकी सुन्दरता तो थी ही, परंतु लीलामें जो भावमयता थी, उसका प्रच्छन्न हेतु था माँ, बाबा तथा महाराजजीकी उपस्थिति और उनका भाव-राज्य। बाबाकी मान्यताके अनुसार बाबूजीके जीवनकी धर्मसंगिनी होनेके नाते पूज्या माँके रूपमें बाबूजी ही उपस्थित थे।

इन तीनों विभूतियोंकी भाव-गरिमा ही संक्रमित होकर पद-पदपर कण-कणको निकुञ्जकी भावमयतासे भावित कर रही थी। अष्टयामलीलाकी भावमयताके बारेमें मेरा जो विश्वास है, वह केवल मेरा ही नहीं, अपितु कई बहिनों और बन्धुओंका भी है। उन बहिनों एवं बन्धुओंके उद्‌गारोंने मेरी आस्थाकी परिपुष्टि की है।

अष्टयामलीलाके सम्पन्न हो जानेके बाद महाराजजीने एक बार स्वानुभव सुनाया। लीला-मंचके सामने बाबा तथा महाराजजीका आसन आस-पास लगा करता था। महाराजजीने बतलाया – लीलाके समय जबतक बाबा अपने आसनपर विराजे रहते, उनके गौर श्रीवपुसे तप्त कंचन-सी दिव्य आभा सतत विकीर्ण होती रहती। यह केवल एक दिन नहीं, आठों दिन ऐसा देखनेको मिला। लीलाके समय जिस परम दिव्य आभाके दर्शन हुआ करते थे, वह उनके किसी विलक्षण एवं विशिष्ट स्वरूपकी संकेतिका है।

यह सारी अष्टयामलीला स्वकीयाभावकी निकुञ्ज लीला थी। यथा-स्थान एवं यथा-अवसर कुछ अन्य पद एवं प्रसंग अवश्य ही इसमें समाविष्ट किये गये, किंतु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य द्वारा प्रणीत 'महावाणी' नामक ग्रन्थ ही आरम्भसे अन्ततक इस अष्टयामलीलाका आधार रहा। इस अष्टयामलीलाको प्रस्तुत करनेके लिये जिस प्रकारकी मंच-सुसज्जा होनी चाहिये थी, वैसी गीतावाटिकामें नहीं थी। इस न्यूनताके बाद भी गीतावाटिकाका वातावरण आठ दिनतक निकुञ्जमय बना रहा।

श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीला इतनी सुन्दर अभिनीत हुई कि गोरखपुरका उतना भूमि-खण्ड, जो गीतावाटिकाके नामसे विख्यात है, आठ दिनके लिये नित्य निकुञ्ज धाम बन गया था। इस सफलताका श्रेय रासमण्डलीकी अभिनय-कुशलताको तो था ही, इसके साथ ही ठाकुर श्रीघनश्यामजीका निर्देशन, श्रीश्रीरामजी तथा श्रीफतेहकृष्णजीका श्रम तथा रासमण्डलीके सदस्योंका परस्पर सहयोग, यह सब पद-पदपर श्लाघनीय है।

लीलाके बीचमें ऐसे मधुर प्रसंग सामने आते थे और ऐसी सुन्दर झाँकियाँ देखनेको मिलती थीं कि कई व्यक्तियोंको दिव्य अनुभूतियाँ हुई हैं।

भावुक साधकोंको तो एक संकेत प्राप्त हो रहा था कि किस प्रकारसे लीला-चिन्तन करना चाहिये। साधकोंके लिये तो यह अष्टयामलीला

जीवननिधिके समान थी ही, साधारण दर्शक-गण भी बड़े विमुग्ध थे। दर्शक-समुदायकी कौन कहे, स्वयं लीला करनेवाले पात्रोंपर तथा पद गानेवाले समाजियोंपर एक नशा-सा छाया हुआ था।

* * *

वर्ष १९८४ ई. में होलीके बाद गीतावाटिकामें दूसरी अष्टयाम लीलाका आयोजन पुनः हुआ। सन् १९८२ ई. में होलीके बाद ही अष्टयाम लीला हुई थी, इस बार भी होलीके बाद यह लीला हुई। उस बार श्रीश्रीरामजी श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डलीके द्वारा अष्टयाम लीला सम्पन्न हुई थी, इस बार भी उन्हींकी रासमण्डली थी। यह अष्टयाम लीला २१ मार्चसे २८ मार्चतक हुई।

श्रीमहाराजजीसे बाबाने विशेष रूपसे निवेदन किया था अष्टयाम लीलाके अवसरपर पधारनेके लिये। अतः १९ मार्चके दिन महाराजजी ठाकुर घनश्यामजी आदिके साथ वृन्दावनसे गीतावाटिका पधारे। महाराजजीके पधारनेसे गीतावाटिकामें एक विशेष प्रकारकी उमंग परिलक्षित हो रही थी। अष्टयाम लीलाके दर्शनके लिये बंगाल, बिहार, दिल्ली, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश तथा उत्तरप्रदेशके अनेक नगरोंसे लोग पधारे। इन अतिथियोंके आगमनसे गीतावाटिकामें चहल-पहल बहुत बढ़ गयी।

२१ मार्च १९८४ के प्रातःकाल, ब्राह्मवेलामें अष्टयामलीला आरम्भ हुई। निभृत निकुञ्जमें श्रीप्रिया-प्रियतमके जागरणके पूर्व शयनकी सात झाँकियाँ दिखलायी गयीं। मच्छरदानीके अन्तरालसे झिलमिल दिखलायी देनेवाली प्रत्येक झाँकीकी भाव-गरिमा अपने ही ढंगकी थी। फिर श्रीललिता आदि सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतमको जगाती हैं। सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतमकी मंगला आरती उतारती हैं और फिर कलेवा कराती हैं। कलेवा करनेके उपरान्त श्रीप्रिया-प्रियतम वन-विहारके लिये पुष्प-शय्याका परित्याग करते हैं। वन-विहारके उपरान्त सखियाँ श्रीप्रियाजीको उबटन लगाती हैं तथा स्नान कराती हैं। स्नान करके श्रीप्रियाजी निकुञ्जमें अपने केशोंका स्वयं ही विन्यास करती हैं। केश-विन्यास-रत श्रीप्रियाजीकी छवि बड़ी मनोहारिणी थी।

इससे आगेकी और भी कई लीलाएँ मंचपर प्रस्तुत की गयीं। यह

लीला प्रातः काल चार बजे आरम्भ हुई थी और सात बजेतक होती रही। पूज्या माँकी अस्वस्थताको देखकर हम सभीको संदेह था कि न जाने माँ आ पायेंगी अथवा नहीं, परंतु माँ आयीं और लगातार तीन घंटेतक बैठी रहीं। इससे हम सभीको आश्चर्य हो रहा था कि माँ इतनी देर कैसे बैठी रहीं, परंतु लीला-दर्शनकी उत्कण्ठा क्या नहीं करवा लेती? अष्टयाम-लीलाके दर्शनके लिये दिल्लीसे परम सम्मान्य श्रीचाचाजी (श्रीजयदयालजी डालमिया) भी पधारे थे। वे भी वृद्ध हैं तथा उनका शरीर रुग्ण हैं। उनके बारेमें भी यही शंका थी कि वे लगातार बैठ नहीं पायेंगे, पर उनकी भी लीला-दर्शनोत्कण्ठाने हम सभीकी शंकाको निराधार सिद्ध कर दिया।

लीला-दर्शनके लिये बाबा तथा महाराजजीका आसन मंचके सामने पास-पास लगाया गया था। लीलाके दर्शनसे बाबाकी वृत्तियोंने बाह्य जगतको छोड़ दिया। जब लीला सात बजे सम्पन्न हुई, उस समय बाबा अत्यधिक अन्तर्मुख थे। बाबाको सँभालकर आसनसे उठाया गया। बाबा बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। बाबा जब कुटियापर आये, तब उनको बिस्तरपर लिटा दिया गया और मच्छरदानी लगा दी गयी। लगभग एक बजे अर्थात् छः घंटेके बाद बाबा कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए। इसे पूर्ण प्रकृतिस्थ-स्थिति नहीं कहनी चाहिये। अन्तर्मुखताकी छाया अभी सभी चेष्टाओंको आच्छादित किये हुए थी। घंटा तो बज जाता है, पर बज जानेके बाद भी उसकी गूँज बहुत देरतक वातावरणमें व्याप्त रहती है। कुछ और अधिक प्रकृतिस्थ होनेपर बाबाने कहा – कई दिनके भूखेकी जो स्थिति अकस्मात् भोजन मिलनेपर होती है, वही बात यहाँ समझनी चाहिये। भोजन मिलनेपर तो उस भूखेकी भूख मिटती है, पर यह रासलीला तो लीला-दर्शनकी भूखको और बढ़ा देती है।

आठों दिन एक-से-एक सुन्दर प्रसंग मंचपर प्रस्तुत किये गये। इस अष्टयामलीलामें माधुर्य-वात्सल्य-सख्य-दास्य, सभी भावोंको समान स्थान प्रदान किया गया था और सभी भावोंकी भावभरी लीलाओंने दर्शकोंको आमोदित-आप्यायित किया। आठ दिवसोंकी लीलामें प्रभात-लीलाके अतिरिक्त कई लीलाएँ और कई झाँकियाँ अतीव सुन्दर थीं। तीसरे दिन माँ यशोदा द्वारा बुलाये जानेपर जब वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा वृषभानुभवनसे नन्दालयके लिये पधारती हैं, उस समय उनके आगमनकी छविका वर्णन

किन शब्दोंमें किया जाये! पथपर गुलाबी पावड़े बिछे हुए हैं। एक सखीने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विशाल छत्र लगा रखा है। कोई सखी मोरछल और कोई सखी चँवर डुला रही है। इसी प्रकार अन्य सखियोंके हाथमें सेवाचर्याकी कोई-न-कोई वस्तु है। सब बड़ी मन्द-मन्थर गतिसे नन्दालयकी ओर अग्रसर हो रही हैं। इस दृश्यसे महाराजजीको बड़ा उद्दीपन हुआ। वे अन्तर्मुख हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगे, जिसे वे बार-बार अपने वस्त्रसे पोंछ रहे थे।

* * *

यहींपर रासलीलाके श्रीश्रीजीस्वरूपसे सम्बन्धित एक प्रसंगका उल्लेख कर रहा हूँ। २५ मार्चके दिन श्रीश्रीजीस्वरूप अपने सामान्य वेषके अन्दर अत्यधिक श्रद्धाभरे हृदयसे बाबाकी कुटियापर आये तब, जब बाबा अपनी कुटियापर नहीं थे। वे बाबाके बिस्तरपर एक पुड़िया रखकर चले गये। बाबा जब लौटकर आये तो यह बात बतलायी गयी। बाबाने कहा कि पुड़िया खोलो, देखो, क्या बात है? पुड़ियाको खोला गया। उसमें कुछ काजू-बादाम थे। मेरा अनुमान है कि वे प्रसादी मेवे होंगे।

बाबाने देखा कि जिस कागजमें मेवे रखे गये थे, उस कागजपर कुछ लिखा हुआ है। बाबाने पढ़नेके लिये कहा। चोपड़ाजीने पढ़कर सुनाया। वह इस प्रकार है –

श्रीराधा

बाबा मैं हूँ आपकी प्यारी लाड़भरी श्रीराधा।

इस वाक्यको सुनकर बाबाके नेत्र छलछला उठे।

* * *

अष्टयामलीलाकी सम्पन्नताके अगले दिन २९ मार्चके पूर्वाह्न कालमें बाबाकी कुटियापर ही रासमण्डलीके सभी व्यक्तियोंका भोजन था। बाबाके निर्देशके अनुसार रसोई परोसनेका कार्य वाटिकाकी माताओं-बहिनोंके द्वारा हुआ। बाबाका आसन ऐसे स्थानपर लगा हुआ था, जहाँसे वे सभीको देख सकें, पर श्रीप्रिया-प्रियतम तो बाबाके सामने बैठकर ही प्रसाद पा रहे थे।

श्रीप्रिया-प्रियतम जब भोजन कर चुके, तभी श्रीडालमियाजी (श्रीजयदयालजी डालमिया) ने उच्छिष्ट प्रसादकी कामनासे अपने दोनों

हाथ श्रीप्रिया-प्रियतमके समक्ष फैला दिये। जिसने अरबपति होनेके अहंकारकी चादरको उतारकर एक किनारे रख दी हो और जिसने आयुकी अधिकतासे उत्पन्न होनेवाली गरिमाको सर्वथा भुला दिया हो, ऐसे 'तृणादपि सुनीच' के मूर्तिमान स्वरूप बने हुए श्रीडालमियाजीके दैन्यको देखकर अनेकोंके नेत्र सजल हो उठे। श्रीप्रिया-प्रियतमने अपना उच्छिष्ट प्रसाद उनको दिया और उन्होंने उस प्रसादको वहीं ग्रहण कर लिया। यह दृश्य वस्तुतः बड़ा भावपूर्ण था। भोजनके बाद रासमण्डलीके सभी व्यक्ति माँके पास गये, सबने माँको प्रणाम किया और माँने सबको फल और विदाई दी। २९ मार्चकी दोपहरके समय रासमण्डलीको प्रस्थान करना था। बाबाके समीप दस दिनतक रहनेका अवसर मिला और बाबाके पाससे चले जानेकी व्यथा तो सभीको थी, पर सबसे अधिक पीड़ा थी श्रीश्रीजीस्वरूपको और श्रीप्रियतमस्वरूपको। उनके नेत्र बार-बार भर-भर आ रहे थे।

इस अष्टयामलीलाके व्यय-भारका वहन श्रीडालमियाजीके सुपुत्र श्रीविष्णुहरिजी डालमियाने किया। बाबाने विष्णुहरिजीकी सराहना करते हुए उनसे कहा – भैया, मैं तुमको कितना साधुवाद दूँ? मेरे कहनेपर तुमने न जाने कितनी कन्याओंके विवाहके लिये आर्थिक सहयोग दिया है। उस आर्थिक सहयोगसे न जाने कितनी अभावग्रस्त कन्याओंका विवाह हुआ है, उन कन्याओंके विवाहसे न जाने कितने अभिभावकों तथा माता-पिताओंको चिन्तासे विमुक्ति मिली है? उनकी कृतज्ञता-भावनाकी सीमा नहीं और तुम्हारे उपकार-परायणताकी सीमा नहीं, पर अब मेरी एक बातपर विचार करो। तुम्हारे द्वारा जो आर्थिक सहयोग कन्याओंके विवाहके लिये मिला, उस व्ययका अन्तिम रूप यही तो हुआ कि वे कन्याएँ गृहस्थ-जीवन स्वीकार करके सांसारिक बन गयीं। वे दम्पति 'सुत बित लोक ईषना तीनी' के वशीभूत होकर माया-जालमें फँस गये और कंचन-काम ही उनके जीवनका केन्द्र-बिन्दु बन गया, परंतु इस अष्टयामलीलाके आयोजनमें तुम्हारे द्वारा जो कुछ व्यय हुआ है, उसकी सार्थकताकी गरिमाकी सीमा नहीं। रासलीलाके दर्शनसे लोगोंमें भावका उद्दीपन हुआ है और लोगोंको श्रीराधा-माधवकी भक्ति-भावनाका दान मिला है, जो सांसारिक जंजालको उच्छिन्न करनेवाला है। जो व्यय दर्शकोंकी संसारासक्तिको मिटाकर उन्हें श्रीराधा-माधवकी भक्ति-भावनामें निमज्जित कर दे, उस व्ययकी जितनी भी सराहना की जाये, वह कम ही रहेगी। तुम्हारे द्वारा जो व्यय रासलीलापर हुआ है, वह सर्वथा साधुवादके योग्य है।

२५ मार्चके दिन बाबाकी गिरिराज-परिक्रमाका वातावरण अत्यन्त सुन्दर रहा। महाराजजी द्वारा रचित मधुराष्टकका गायन हुआ। गायनका आरम्भ तो किया था श्रीरामजीने, पर बादमें स्वयं महाराजजी ही गाने लगे। आगे-आगे महाराजजी गाते, पीछे-पीछे अन्य लोग। इससे वातावरण बड़ा भावमय हो गया। बाबा तो विभोर हो उठे। इस मधुर गानको सुनकर बाबाका मन तो थिरक ही रहा था, शरीर भी थिरकने लगा। मधुराष्टक गायनमें जब जैसा वर्णन आता, तदनुसार बाबा वैसी नृत्यमयी चेष्टा करने लगते। जब यमुनाजीका वर्णन आया तो बाबाकी अगुलियाँ इस प्रकार नृत्य करने लगीं, मानो जल-प्रवाहमें लहरियाँ उठ-गिर रही हों। जब नूपुरकी रुनझुनका वर्णन आया, तब बाबा अपने चरणोंको एक बार उसी प्रकारसे नचाने लगे, जिस प्रकारसे नृत्यके समय मंचपर श्रीप्रिया-प्रियतम नृत्य करते हैं। बाबा तो परिक्रमा करना ही भूल गये। बाबा बहुत देरतक महाराजजीके समक्ष ही खड़े रहे। एक बार परिक्रमा करनेकी बात ठाकुर घनश्यामजीने याद दिलायी, इसके बाद भी बाबा खड़े ही रहे।

वस्तुतः बाबाका मन रागाकुल हो रहा था। मधुराष्टकके गायनके बाद बाबाके संकेतपर 'चलो चलो री किसोरी वृन्दाबनमें' पद गाया गया। इस पदके गायनके समय श्रीरामजीने, हरिवल्लभजीने, फतेहकृष्णजीने, ठाकुर श्रीघनश्यामजीने तथा रासमण्डलीके अन्य व्यक्तियोंने जो आलापचारी की तथा जिस लालित्यके साथ पदका गायन किया, उससे सारा वातावरण रागसे रञ्जित और अनुरागसे आप्लावित हो उठा। इस पदकी समाप्तिके समय एक बड़ा ही भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। रासमण्डलीके श्रीश्रीजीस्वरूप और श्रीठाकुरस्वरूप भी वहीं उपस्थित थे। पदके अन्तमें ज्यों ही यह पंक्ति गायी गयी कि 'मेरो जनम सुफल पग परसनमें', त्यों ही श्रीठाकुरस्वरूपजी अपने स्थानसे उठे और परिक्रमा-पथमें आकर बाबाके श्रीचरणोंमें अपना मस्तक रख दिया। यह दृश्य इतना भावपूर्ण था कि क्या कहा जाये? इसके बाद गाया गया 'आज बन्यो है प्यारो गिरवरधारी'। यह पद-गान भी बड़ा सुन्दर रहा। इन तीन पदोंके गायनमें लगभग डेढ घंटे लग गये। बाबा डेढ़ घंटेतक एक स्थानपर लगातार खड़े रहे। परिक्रमा करनेकी सुधि नहीं रही। महाराजजीने परिक्रमा आरम्भ होनेके समय जो पुष्पमाला बाबाको पहनायी थी, वह पुष्प-गजरा आजानुलम्बित नहीं, अपितु वह तो आ-चरण-लम्बित था। जिस समय बाबाका शरीर पदोंके भावोंके अनुरूप

हिलता-डुलता था, उस समय उस सुदीर्घ आ-चरण-लम्बित पुष्प-गजरेका हिलना-डुलना बड़ा ही सुन्दर लगता था। बाबाको खड़े-खड़े डेढ़ घंटे हो चुके थे और अभी परिक्रमा करना शेष था। यह देखकर रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजीका मन कुछ आशंकित हो उठा कि इससे तो अगले अष्टयामलीला-कार्यक्रमको आरम्भ करनेमें बड़ा विलम्ब हो जायेगा। बाबा तो अपने भावमें निमग्न थे। बाबाको तो कुछ सुध-बुध थी नहीं। भावी विलम्बकी आशंकासे चिन्तित होकर श्रीश्रीरामजीने तीसरा पद पूरा होते ही 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' संकीर्तन आरम्भ कर दिया, जो नियमतः सदा परिक्रमाके अन्तिम क्षणोंमें गाया जाता रहा है। इस संकीर्तनके आरम्भ होते ही बाबाको चेत हुआ। परिस्थितिकी सुधि हो आयी और फिर तो बाबाने लगभग दौड़ते हुए ही सारी परिक्रमा की। परिक्रमामें उपस्थित आज सभी लोग अत्यधिक उमंगमें थे, अतः आज संकीर्तन भी बहुत तुमुल स्वरमें हो रहा था। बाबाके आनन्दकी तो सीमा नहीं थी।

* * * * *

बउआ का महाप्रयाण

बाबाकी चरणाश्रित बहिनें सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीने ५ फरवरी, १९८४ रविवारको जिस भावमय स्थितिमें महाप्रयाण किया, उसे विस्मृत किया ही नहीं जा सकता। बहिन सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीका नाम तो था अम्बादेवीजी माथुर, परंतु वे हमलोगोंके मध्य 'बउआ' के नामसे जानी जाती थीं। कई माथुर जातीय परिवारोंमें माँको बउआ ही कहते हैं। लगभग नब्बे वर्षकी आयुवाली वृद्धा बउआ दस-बारह दिनोंसे रुग्ण चल रही थी। उसकी रुग्णताको देखकर कई लोग संदेह भी करते थे कि यह पका आम अब कहीं डालसे चू जानेवाला तो नहीं है। लोगोंका संदेह सत्य निकला, पर उसके अन्तिम तीन-चार दिनोंकी भावमयी स्थितिको देखकर सब आश्चर्य करने लगे! वैसे बउआने अपने जीवनमें साधना कम नहीं की है, फिर भी महाप्रयाणके समय भला किसकी ऐसी सुन्दर प्रेममयी स्थिति बन पाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें कहा भी है कि मुनि लोग जन्म-जन्मतक यत्नपूर्वक साधना करते हैं, फिर भी जीवनके अन्तिम क्षणमें मुखसे भगवानका नाम

'राम' उच्चरित नहीं हो पाता। 'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।', पर बउआकी अद्‌भुत भाव-दशाने सभी उपस्थित लोगोंके मनमें यह विश्वास दृढ़ दिया कि भगवान हैं, भगवानका दर्शन होता है और भगवान प्रेमके अधीन हैं।

बहिन सरोज और मुन्नीके पूज्य पिता श्रीमाथुरजी एक कुशल चित्रकार थे। यह प्रायः देखा जाता है कि सच्चा कलाकार अपनी कला-प्रियताके अतिरेकमें न अपने शरीरकी भली प्रकार चिन्ता कर पाता है और न अपने जगतके व्यवहारको ठीक प्रकारसे निभा पाता है। यह बात श्रीमाथुरजीके सम्बन्धमें भी सच्ची थी। ऐसी परिस्थितिमें बउआपर घर-गृहस्थीकी सँभालका उत्तरदायित्व और अधिक आ गया और बउआने एक पतिव्रता नारीकी भाँति इसका सम्यक् प्रकारसे निर्वाह किया।

यह पूरा परिवार पूज्य श्रीनारायण स्वामीजीको गुरु मानता था। ये श्रीनारायण स्वामीजी वे ही हैं, जो केवल टाट धारण किया करते थे और जिनकी एक लघु पुस्तिका 'एक संतका अनुभव' गीताप्रेससे प्रकाशित है। अखण्ड मौन रहकर भगवन्नामका जप करनेसे टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजको भगवान नारायणके दर्शन हुए थे। इस पुस्तिकामें उन्होंने स्वयं लिखा है – 'परम दयालु नारायणने इस दासपर कृपा करके नर्मदाके किनारे चान्दोद नामक स्थानमें दर्शन दिये थे। पहले छम-छमकी आवाज आयी। फिर विमान आया, जिसको चार पार्षदोंने उठा रखा था। साधन करनेसे इस दासको तीन वर्ष छः मास चौबीस दिनमें भगवानके दर्शन हुए थे।'

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज मौन एवं नामजपको अत्यधिक महत्त्व दिया करते थे। अपने गुरुदेवकी इस शिक्षाके अनुसार श्रीमाथुरजी प्रायः मध्य रात्रिके समय अपने आसनपर बैठकर नामजप और ध्यानकी साधना किया करते थे। बउआ प्रायः अपराह्न कालतक मौन रहा करती थी। उसे बच्चोंके लिये भोजन बनाना पड़ता था। जब बच्चे स्कूल चले जाते, तब उसके बाद बउआ अपने पूजा-पाठके नियमको पूरा करनेमें संलग्न होती और नित्य-नियमके पूरा होनेके बाद ही मौनका विसर्जन होता।

अयोध्याके एक संतके मुखसे बउआने सुन लिया कि

श्रीरामचरितमानसके १०८ नवाह्न पाठका नियम लेकर जो अखण्ड रूपसे पाठ करता है, उसे भगवानके दर्शन होते हैं। बउआने यह बात पकड़ ली और उसने मानसका नवाह्न पाठ आरम्भ कर दिया। तीन वर्षमें बउआने मानसके १०८ नवाह्न पाठ पूरे किये। उसी दिन मध्य रात्रिके समय भगवान श्रीसीतारामजी विमानसे पधारे। साथमें श्रीलखनलालजी भी थे। बउआके पूजा-पाठ-नैवेद्यादिकी तैयारी बहिन सरोज किया करती थी और उस दिन वह किसी कार्यसे रीवाँ नगर गयी हुई थी। विमानको देखते ही बउआ जोर-जोरसे पुकारने लगी – अरे, रामजी तो आ गये। विमान आ गया। सरोज तो है नहीं, कौन सारी तैयारी करेगा? भगवान तो आ गये। इनका स्वागत-सत्कार कैसे हो?

एक बार बउआने एक स्थानपर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी और कथा बड़ी प्यारी लगी। बस, उसने श्रीमद्भागवतका पाठ आरम्भ कर दिया। बउआ केवल अर्थ पढ़ा करती थी, उसे संस्कृत तो आती नहीं थी। उसके मनमें कोई संकल्प नहीं था कि इतने दिनकी अवधिमें पाठ पूर्ण करना है। उसकी पर भागवतजीका पाठ अच्छा लगता था। दिनमें सूर्यके प्रकाशमें और रातमें लालटेनकी रोशनीमें भागवत पढ़ती रहती थी। चाव-चावमें बउआ सारे भागवतका पाठ कर गयी। यह भी क्या संयोगकी बात है कि जब दिनोंकी गणना की गयी तो पता चला कि सम्पूर्ण भागवतका पाठ सात दिनमें पूरा हो गया है। अनजानेमें ही उसके द्वारा श्रीमद्भागवत- सप्ताहका एक पारायण हो गया।

बउआने एक बार मानसके सुन्दरकाण्डका पाठ आरम्भ किया। उसने सुन रखा था कि भगवान श्रीरामकी कथाको सुननेके लिये श्रीहनुमानजी महाराज पधारा करते हैं। इस सुनी हुई बातके आधारपर बउआने पाठ आरम्भ करनेके पहले एक लाल आसन श्रीहनुमानजीके विराजनेके लिये बिछाया और श्रीहनुमानजीका आह्वान करते हुए उसने कहा –

तुलसी कृत रामायण कथा कहूँ अनुसार।
आसन लीजै परम हित आइये पवनकुमार।।

श्रीहनुमानजीके आह्वानका यह दोहा ज्यों ही पूरा हुआ, त्यों ही विशालकाय श्रीहनुमानजी आकर उस आसनपर विराज गये। श्रीहनुमानजीको देखकर बउआ अत्यधिक भयभीत हो गयी और उसके मुखसे चीख निकल

गयी। इस पाठके बादसे फिर कभी बउआने श्रीहनुमानजीका आह्वान नहीं किया। श्रीहनुमानजीके आह्वानकी बात आनेपर बउआ कहा करती थी कि मुझे तो उनसे बड़ा डर लगता है।

बउआने श्रीप्रयागराजमें कई कल्पवास किये हैं। कल्पवास करनेवालेको सम्पूर्ण माघ मासभर प्रयागराजमें गंगाजीके किनारे रहना पड़ता है तथा प्रतिदिन त्रिवेणीपर संगम-स्नान करना पड़ता है। माघ मासके घोर शीतमें यह कल्पवास एक कठोर तप ही है। जब बउआ अन्य-अन्य नगरोंमें रहती थी, तब वह कल्पवासके लिये उस-उस नगरसे कई बार प्रयाग आयी और प्रयागमें रहते समय तो वह अपने घरसे माघ मासमें प्रतिदिन सपरिवार संगम-स्नानके लिये त्रिवेणीपर जाया करती थी। प्रतिदिन सपरिवार आनेमें बड़ी परेशानी हुआ करती थी। एक दिन जब परेशानी सीमाको पार करने लगी तो बउआ झुँझला उठी और उलहना देती हुई भगवती गंगासे बोली – इतनी परेशानी झेलनी मेरे बसकी बात नहीं है। गंगा परमेश्वरी! अब तू मेरी बात सुन ले। अब कलसे मैं नहीं आऊँगी।

इस उपालम्भके तुरंत थोड़ी देर बाद ही किसी विचित्र विधानसे संगमके एकदम निकट एक बहुत सुन्दर स्वच्छ और विशाल तम्बूमें सपरिवार रहनेकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था अयाचित रूपसे हो गयी।

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके बाद बउआके मनमें बड़ी व्यथा हुई कि कोई सच्चा संत मिलना चाहिये, जिसके आश्रयमें रहा जा सके। सच्चे संतका आश्रय किलेकी दीवालके समान है। सच्चे संतकी प्राप्तिके लिये बउआ भगवानसे प्रार्थना करने लगी। फिर भगवत्कृपासे श्रीजजसाहब (परमादरणीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के द्वारा बउआको गीतावाटिकाके बाबूजी तथा बाबाका परिचय मिला और क्रमशः सारा परिवार ही इन दो संतोंके अति निकट सम्पर्कमें आ गया। बाबूजीका परिचय तो बउआको पहलेसे ही था। सन् १९३६ ई. में जब परम पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें एक वर्षका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन गीतावाटिकामें हुआ था, उस समय बउआ फैजाबादमें रहती थी। तब बउआके सहोदर भाई गोरखपुरमें डिप्टी कलक्टर थे। अपने सहोदर भाईसे अखण्ड हरिनाम संकीर्तनका समाचार पाकर बउआ फैजाबादसे गोरखपुर आयी थी और अपने भाईके पास ठहरी थी। बउआ प्रतिदिन अपने भाईके बँगलेसे पूर्वाह्न कालमें गीतावाटिका आती और अपराह्न कालमें लौट जाती। इस प्रकार बाबूजीके संत-जीवनकी जानकारी तो बउआको

थी ही, पर गीतावाटिकाके इन दोनों संतोंके प्रति श्रद्धा और समर्पणका भाव श्रीजजसाहबके माध्यमसे ही पुष्ट हुआ।

७ अप्रैल १९६७ को जब बाबाने मौन लिया था, तब बाबाके दर्शनार्थ बउआ सपरिवार प्रयागसे गोरखपुर आयी थी। उस दिन एक बड़ी अद्‌भुत और विशेष घटना घटित हुई। ७ अप्रैलको दोपहरके बाद जब बाबा श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा रहे थे, उस समयकी बात है। परिक्रमाके समय बउआ भी उपस्थित थी। बउआको दिखलायी दिया कि बाबाने एक लहँगा पहन रखा है। उस लहँगेकी किनारी बड़ी चौड़ी और बहुत चमकीली है। उस चौड़ी-चमकीली किनारीसे दिव्य प्रकाशकी किरणें निकल रही हैं। प्रकाशकी किरणोंसे सारा परिक्रमा-पथ ज्योतित हो रहा है। लहँगेकी चमकीली किनारीसे निरन्तर निकलनेवाली सुनहरी किरणें चारों ओर फैली हुई हैं। वह लहँगा बड़ा लम्बा है। बउआको ऐसा लगा कि कहीं बाबा उलझकर गिर न जायें। बाबा तो अपने संन्यास धर्मके अनुसार सहज स्वाभाविक गैरिक वेषमें ही थे, पर किसी अचिन्त्य सौभाग्यके फलस्वरूप भावराज्यसे सम्बन्धित वास्तविकताकी किंचित् झाँकी सत्त्व-सम्पन्न-हृदयवाली बउआको हो गयी। जो भी हो, इस दिव्य लोकोत्तर अनुभूतिके कारण बउआने मन-ही-मन समाधान कर लिया कि ये बाबा लहँगा पहनते हैं, शायद इसीलिये लोग इन्हें राधा बाबा कहते हैं। राधा बाबा नामका रहस्य अपनी खुली आँखोंसे देखकर बउआका मन गहरी श्रद्धासे भर गया।

सन् १९७२ ई. में पतिदेव श्रीमाथुरजीके दिवंगत हो जानेके बाद बउआ गीतावाटिकामें रहने लगी। बाबाकी आज्ञा मिलनेके बाद सन् १९७२ ई. की अक्षयतीज तिथिके दिन बउआ गीतावाटिका आयी और अपने अन्तिम श्वासतक यहीं रही। सबसे छोटी सुपुत्री मुन्नी तो बहुत पहलेसे ही बाबाके चरणाश्रित होकर गीतावाटिकामें रह रही थी।

बउआका बाबापर बड़ा ही विश्वास था, इसे शुद्ध हृदयका सहज विश्वास कहना चाहिये। एक बार बउआके पैरके तलवेमें गोखरू (CORN) हो गया। गोखरूकी चुभनके कारण चलनेमें बड़ा कष्ट होता था। जब इसके बारेमें बउआने बाबाको बतलाया तो बाबाने विनोद करते हुए कहा कि मैं तुमको एक मन्त्र बतलाता हूँ। 'जन्तर मन्तर घोंघा सारी। बुढ़िया खइलस लोन सुपारी।।' बस, इस मन्त्रको तीन बार पढ़कर तीन अञ्जलि जल पी लिया करो। इसे सुनकर बउआ बड़ी प्रसन्न हुई। बाबाने तो विनोद किया था, परंतु बउआके मनने इसे एक सत्यके रूपमें स्वीकार कर लिया। अब बउआ

प्रतिदिन इस मन्त्रको पढ़कर जल पीने लगी और आश्चर्यकी बात है कि बउआके पैरका गोखरू कुछ दिन बाद समाप्त हो गया।

सबेरे उठते ही बउआका दैनिक लीला-चिन्तन-क्रम आरम्भ हो जाया करता था। लीला-चिन्तन निम्नलिखित पंक्तियोंसे आरम्भ होता था –

उठो मेरे लाल मदन गोपाल, आये तेरे ग्वाल बुलावन को।
चुटिया चुपड़ी दधि माखन सों, बंशी लो शंख बजावन को।
बृंदावन जाय आनंद करो, लकुटी ले गऊ चरावन को।

लीला-चिन्तनके कारण व्यस्त रहनेवाली बउआ कई बार मुन्नीसे कहा करती थी – अपने इन सब कामोंसे मुझे फुरसत कहाँ मिलती है?

बउआ ढोलक बजानेमें बड़ी माहिर थी। वह ढोलक ऐसा बजाती थी मानो तबलेपर ठेका दिया जा रहा हो। बउआको पान खानेका शौक था। वृन्दावनसे पूज्य महाराजजी जब गीतावाटिका पधारते थे, तब बउआ उनको पान बीड़ी अवश्य दिया करती थी। बाबाने भी बउआसे माँग करके पान बीड़ी कई बार आरोगी है। बउआ एक बड़ा सुन्दर तमोलिनवाला पद भावपूर्वक गाया करती थी। इस पदमें जनकपुरकी तमोलिन दूल्हा श्रीरामसे पान बीड़ी आरोगनेके लिये आग्रह कर रही है। इस पदको बाबा कई बार बउआसे परिक्रमाके समय सुना करते थे। बउआके मुखसे यह पद बड़ा अच्छा लगता था। तमोलिनवाला पद इस प्रकार है –

खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी।
पड़ा है केवड़ा कत्थेसे महक आती है,
गिलोरी मेरी* बड़ी दूर दूर जाती है।
तमोलिन हूँ मैं जनकपुर की नाम मोती है,
तुम्हारी जानकी मेरा ही पान खाती है।
पड़ी दोनों इलायची छोटी बड़ी।
खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी।।

नब्बे वर्षकी आयु हो जानेसे अति वृद्धावस्थाके कारण बउआका शरीर काफी कमजोर हो गया था और दुर्बल बउआ प्रायः खाटपर चुपचाप पड़ी रहती थी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें वह कुल पन्द्रह-सोलह दिन बीमार रही होगी। बुधवार पहली फरवरीके दिनसे बउआकी स्थितिमें परिवर्तन आया। इस दिन शामको रुग्ण बउआ खाटपर लेटी-लेटी गाने लगी और उसके गायनके

द्वारा ही उसकी भाव-दशाका परिचय मिलने लगा। बउआने एक गीत गाया –

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है।।

गाते समय लय-तालमें चूक नहीं होती थी। धीरे-धीरे बात फैलने लगी कि बउआ इतनी बीमार है कि सम्भवतः उसके चले जानेकी सम्भावना है, इसके बाद भी वह मस्त होकर लय-ताल सहित पद गाती है। ज्यों-ज्यों यह बात फैलने लगी, त्यों-त्यों लोग अधिकाधिक संख्यामें मिलने-देखनेके लिये बउआके पास आने लगे। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है।।
मेरा मन हो चुका है, मेरा तन हो चुका है।
मेरा प्राण हो चुका है प्राण का प्राण हो चुका है।।

शुक्रवार, ३ फरवरीकी शामको कई लोग बउआके पास बैठे-बैठे उसके गायनको सुन रहे थे और उसकी मस्तीको देख रहे थे। बउआ तो अपनी मस्तीमें गा रही थी, तभी एकने पूछा – क्यों बउआ! वह तुमको दिखलायी देता है क्या?

बउआने चट कहा – वह मेरे सामने खड़ा है न!

फिर पूछा गया –वह अकेला है या श्रीराधाजी भी उसके साथमें हैं?

बउआने कहा – नहीं, राधाजी नहीं हैं। वह अकेला ही है।

पुनः जिज्ञासा हुई – वह तुमसे बात करता है या नहीं?

बउआने बताया – नहीं, बात नहीं करता। वह बात करते शर्माता है। उसे लाज लगती है।

बउआको छेड़नेकी दृष्टिसे फिर कहा गया – बउआ! वह तुमसे बात नहीं करता तो तुम उसके कान पकड़ो।

इतना कहते ही अपना हाथ फैलाकर अँगुलियोंको मटकीले ढंगसे घुमाते हुए बउआने कहा – अरे, वह तो बड़ा प्यारा है, अति ही प्यारा है। वह बारह वर्षका इतना प्यारा लगता है कि क्या कहूँ?

बउआ यह सब इतने सहज ढंगसे मस्तीभरे स्वरमें कह रही थी कि सबका मन रीझता चला जा रहा था। तभी एकने अनुरोध किया अथवा यों कह लीजिये कि बउआसे प्यारभरा आग्रह किया – बउआ! हमको भी दर्शन करा दो।

बउआने झिड़कनकी पुट देते हुए कहा – क्या तुमको दिखलायी नहीं देता कि वह सामने खड़ा है? वह सामने ही तो है। तुम देख लो।

इतना बउआ द्वारा कहा जाना था कि वह 'जसोदाका कुँवर' बउआके सामनेसे तिरोहित हो गया। उसका तिरोहित होना था कि बउआ चिल्ला पड़ी और उच्च स्वरमें कहने लगी – अरे, वह तो चला गया। प्यारे! प्यारे! तुम कहाँ चले गये? प्यारे! जल्दी आना।

स्वरका तीखापन तथा निर्लज्ज पुकार वस्तुतः इस बातको प्रमाणित कर रही थी कि उसके तिरोहित हो जानेसे कितनी व्यथा बउआके हृदयमें हो रही थी। पुकारकी कातरताने बाध्य कर दिया 'जसोदाके कुँवर' को पुनः सामने आ जानेके लिये।

बउआके सुपुत्र माथुरसाहबने एक बार बउआसे पूछा – तुम इस समय क्या सोच रही हो?

बउआने तुरंत कहा – भगवानको।

माथुरसाहब इसे सुनकर प्रसन्नतामें हँस पड़े। इन दो-तीन दिनोंमें बउआने कई बार पूज्य श्रीमहाराजजी (टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज) को भी याद किया। बउआ जब-तब अपने पदको गाती ही रहती थी – 'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'

इसे सुनकर बहिन मुन्नीने बउआसे पूछा – यह भजन तो मैंने तुम्हारे मुँहसे कभी नहीं सुना। यह तुम्हारा पुराना भजन तो है नहीं। फिर यह भजन कहाँसे आया?

बउआने कहा – यह भजन मेरे दिलमेंसे निकला है, दिलके भीतरसे निकला है। वह मेरे दिलमें ही तो बैठा है। वह हर वक्त मेरे साथ ही रहता है और वही मेरी सँभाल हमेशा करता रहता है।

रविवार, ५ फरवरीके मध्याह्न कालमें बउआने महाप्रयाण किया। इसी दिन सबेरे चोपड़ाजी बउआको देखने और सँभालनेके लिये गये। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी थी और उसीको

गा रही थी –

जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।
मुझे दरस दे गया है, मेरा दर्द ले गया है।
मेरा दर्द ले गया है, मेरा दुःख ले गया है।
जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।

चोपड़ाजी बउआकी मस्तीपर बलिहारी जा रहे थे। तभी बउआने बड़े जोरसे पुकारा – राधा बाबा, राधा बाबा।

चोपड़ाजी इस विचित्र स्थितिको अवाक् हुए थोड़ी देरतक देखते रहे, फिर बउआसे पूछा – क्या बाबाको बुला लाऊँ?

बउआने कहा – जाओ। बाबासे कह देना कि बउआने बुलवाया है।

उधर चोपड़ाजी बाबाको बुलानेके लिये गये और इधर बउआने एक नया ही गीत गाना आरम्भ कर दिया–

मिलेगी जो रसिकोंकी जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।

चोपड़ाजीसे सूचना पाकर बाबा बउआके पास आये। बाबाके पहुँचते ही बउआने कहा – बाबा! राम-राम, राम-राम, राम-राम।

बाबा बउआके सामने कुर्सीपर बैठ गये और बाबाके बैठते ही बउआने वही गीत गाना आरम्भ कर दिया, जो वह बाबाके आनेसे पहले गा रही थी –

सदा श्याम श्यामा पुकारा करेंगे
नवल रूप निश-दिन निहारा करेंगे।
मिलेगी जो रसिकों की जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।।

अभीतक तीन-चार दिनसे बाबा तो दूसरोंके मुखसे बउआकी भाव-दशाके बारेमें विविध वृत्त सुना करते थे, पर अब वे स्वयं सुन रहे थे और इन पंक्तियोंको सुनते ही बाबाकी आँखें भर आयीं। फिर उन्मुक्त स्वरमें बाबाके मुखसे निकल गया – वाह! वाह! बउआ, तुम वस्तुतः दर्शनीय हो, वन्दनीय हो।

इसके बाद बाबाने बउआसे पूछा – बउआ! क्या हाल है?

बउआने कहा – बाबा! बड़ी कृपा है, बड़ी कृपा है, बहुत कृपा है।

बस, आनन्द ही आनन्द है। आनन्द बरस रहा है। अपार आनन्द है।

बाबाने फिर पूछा – क्यों बउआ! क्या कोई कष्ट है?

बउआने बताया – कोई कष्ट नहीं, कोई तकलीफ नहीं। तनिक भी कष्ट नहीं। बस, आनन्द ही आनन्द है।

तभी मुन्नीने बउआसे कहा – अपना पद बाबाको सुनाओगी क्या?

इतना कहते ही बउआ गाने लगी – 'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'

इन तीन-चार दिनोंमें उसने जितनी भी पंक्तियाँ जोड़ी थी, उन सबको गा-गाकर बउआने सुना दिया। बउआ अत्यधिक लय-ताल पूर्वक गा रही थी तथा अपने हाथके संचालन और भृकुटीके नर्तनद्वारा भाव भी बतलाती जा रही थी। वह हर पंक्ति बड़े ही लहजे और लटकके साथ गा रही थी। एक बार बउआने अपना हाथ ऐसा फैलाया मानो वह हाथ बाबाका स्पर्श कर लेगा। तुरंत बाबाने अपनी कुर्सी पीछे हटायी।

बाबाने पूछा – क्या ढोलक बजाओगी?

बउआने कहा – अब ढोलक बजानेमें क्या रखा है।

फिर बाबाने 'तमोलिन'वाले पदकी एक पंक्ति सुना दी। इसे सुनना था कि बउआने वह तमोलिनवाला पद गाना आरम्भ कर दिया।

बाबाने पूछा – क्या तुमको दर्शन हो रहे हैं?

बउआने कहा – हाँ, हाँ। वह मेरे सामने ही खड़ा है। बाबा वह इतना सुन्दर है, इतना सुन्दर है कि क्या बताऊँ? ऐसी सुन्दरता तो मैंने कहीं देखी ही नहीं। बड़ा ही सुन्दर है वह! और यह मौसम भी कितना सुहावना है?

इस समय तो सचमुच घोर शीत पड़ रहा था। बाबाने उपस्थित लोगोंको समझानेके लिये कहा – इस समय बउआ यहाँ तो है नहीं। इसे तो इस समय 'उसका' दर्शन, 'वहाँ'का दृश्य और 'वहाँ' का ही मौसम अनुभवमें आ रहा है।

बाबाको बैठे हुए लगभग एक घंटा हो गया था। बाबाने मुन्नीसे कहा – तुम बउआसे पूछो कि बाबा जायें क्या? बाबाको स्नानादिसे निवृत्त होना है।

मुन्नीके पूछते ही बउआने कहा – जाओ बाबा! जाओ। जरूर जाओ।

बाबाने मनुहारभरी वाणीमें कहा – तुम कहो तो मैं बैठा रहूँ। तुम मेरी माँ हो न!

बउआने प्यार सहित कहा – तुम जाओ। तुम थक जाओगे। तुम जरूर जाओ!

बाबा बउआके पाससे चले आये। आते-आते बहिन सरोज और मुन्नीसे कहा – बउआको कोई दवा मत देना। बउआको किसी प्रकारकी सांसारिक स्मृति भी मत दिलाना। अब बउआको सँभालनेकी आवश्यकता नहीं है। नन्दनन्दन स्वयं इसकी सँभाल कर रहे हैं।

बाबाके चले आनेके बाद बउआको सूजी तथा दूधका पतला आहार दिया गया। बउआने अच्छी प्रकारसे आहार ग्रहण किया। कुछ माताएँ-बहिनें बउआके पास बैठी थीं। बउआने उनसे हरिनाम संकीर्तन करवाया। इसके बाद फिर वह गाने लगी –

तुम्हें श्याम वंशी बजानी पड़ेगी।
लगी मेरे दिलकी बुझानी पड़ेगी।।

बउआके अधरोंका यह अन्तिम गीत था। उसी समय बउआके ऊर्ध्व श्वास चलने लगे। बाबाको तुरंत सूचना दी गयी। बाबा जल्दी-जल्दी आये। बउआको भूमिपर लिटा दिया गया था। बाबाके समक्ष अन्तिम बार हाथका कम्पन हुआ और बाबाके सामने ही बउआ अपने 'जसोदा के कुँवर'के पास चली गयी।

शव-यात्राके पूर्व कुछ बहिनें जब शवको भली प्रकारसे स्नान करा चुकीं तो अन्तमें बाबाने स्वयं स्नान करवाया। एक व्यक्ति शवको पकड़े रहा। बाबाने ऋषिकेशवाला गंगाजल शवके शीशपर डाला और अपने हाथसे मस्तक मला।

संन्यास लेनेके बाद बाबाके जीवनका यह दूसरा प्रसंग है, जब कि किसी स्त्रीके शवको उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे स्नान करवाया हो। प्रथम प्रसंग है कमली मैयाका, जब बाबाने अपने हाथसे उसके शवको स्नान करवाया था। उसके बाद यह द्वितीय प्रसंग है। स्नान कराते समय बैठे हुए शवको देखकर बाबाने कहा कि ऐसा लगता है मानो बउआ

समाधिस्थ हो। जब शवको अर्थीपर विराजित कर दिया गया तो बाबाने उसका फूलोंसे शृङ्गार किया, फिर अर्थीकी तीन परिक्रमा देकर अन्तिम प्रणाम किया और अन्तमें बाबाने अर्थीको कन्धा दिया।

बउआके निधनपर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए बाबाने कहा – मृत्यु हो तो ऐसी हो। महाप्रस्थानके समय बउआ एक सिद्ध संतकी कोटिमें स्थित थी। उसने योगीन्द्र-मुनीन्द्रकी-सी गति पायी। वह सीधे श्रीकृष्णके धाम गयी। उसके लिये किसी प्रकारके श्राद्धादि कर्मकाण्डकी आवश्यकता है नहीं, फिर भी परम्पराके निर्वाहके लिये यह सब अवश्य करना चाहिये।

* * * * *

अटपटा उत्तर : अनोखी बात

गोरखपुरके भाई पुरुषोत्तमदासजी सिंहानियाका बाबूजीसे बड़ी निकटताका सम्बन्ध रहा है। पुरुषोत्तमजीके प्रति बाबूजीकी बड़ी आत्मीयता रही है। इनके सारे परिवारने बाबूजीको सदा गहरी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा है। इनके पूरे परिवारको एक साधु परिवार कहना चाहिये। श्रीपुरुषोत्तमजीके मनकी आन्तरिक माँग रही कि मुझे भगवद्दर्शन हो, एतदर्थ उनके भजन-परायण जीवनमें प्रायः जप-ध्यान पूजा-पाठका क्रम चलता ही रहता था। सत्संग और स्वाध्याय तो मानो इनका व्यसन था। मैंने न कभी देखा था और न कभी उन्होंने मुझसे बतलाया था, पर मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि एकान्तके क्षणोंमें भगवद्दर्शनके लिये इनके दो नेत्रोंसे गंगा-यमुनाकी धारा अवश्य बही होगी।

एक बार पुरुषोत्तमजी बाबाके पास बैठे हुए थे। भगवद्दर्शनोत्सुक भक्तके समर्पित जीवनका स्वरूप क्या हो, यही वार्तालापका विषय था। बात करते-करते पुरुषोत्तमजीने बड़ी उत्सुकता पूर्वक बाबासे एक प्रश्न पूछा – कभी तो आप भगवान श्रीकृष्णके लिये रोते ही होंगे?

उनका पूछना स्वाभाविक था। भगवद्दर्शनकी लालसा जिसके मनमें होती है, उसकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें चूती ही रहती हैं। गिरधर गोपालके दर्शनकी तीव्राभिलाषामें पगली मीराबाईके अगणित पदोंकी अगणित पंक्तियाँ आँसुओंसे भीगी हुई हैं। इसी प्रकार आँसुओंसे भीगे हुए शब्दोंके माध्यमसे श्रीपुरुषोत्तमजीने यह जिज्ञासा बाबाके सामने रखी थी।

बाबाने ज्यों ही इस जिज्ञासाको सुना, त्यों ही उन्होंने उत्तर दिया – अरे, मैं उनके लिये नहीं रोता, बल्कि वे ही मेरे लिये रोते हैं।

यह तो बड़ा अटपटा उत्तर था। ऐसे उत्तरको सुननेके लिये पुरुषोत्तमजीका मन बिल्कुल तैयार नहीं था। ऐसे उत्तरकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। बाबासे प्राप्त उत्तरमें जो तथ्य व्यक्त था, वह पुरुषोत्तमजीके गले उतर नहीं पाया। उनके मनने इस उत्तरको स्वीकार नहीं किया, पर अपने संदेहके निवारणके लिये उन्होंने उलटकर फिर कोई अन्य प्रश्न भी नहीं किया। अधिक बोलना वाचालता होगी, यही सोचकर पुरुषोत्तमजी चुप ही रहे।

थोड़ी देर बाद बाबासे पारस्परिक चर्चाका जब विश्राम हो गया, तब पुरुषोत्तमजी मेरे पास कमरेमें आये और बाबासे हुए प्रश्नोत्तरका विवरण मुझे सुनाने लगे। बाबाके उत्तरको सुनकर मेरा मन झूम उठा। ऐसे भावपूर्ण उत्तरकी सराहनाके लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं था।

बाबाने उस उत्तरमें अपने जीवनके अति गम्भीर रहस्यको अति सरल शब्दोंमें कह दिया था। सचमुच, संतकी वाणीकी गहराईको समझना बड़ा कठिन है। संत अपने जीवनके रहस्योंको कुछ खोलना चाहें, तभी दूसरोंको कुछ आभास मिल पाता है।

बहुत समय पहले एक बार ऐकान्तिक चर्चाके मध्य बाबाने बतलाया था कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी परमाह्लादिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाके दिव्य रसराज्यमें मेरा सर्वप्रथम प्रवेश विशाखा भावसे हुआ था। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीकी आठ सखियाँ हैं और इन अष्ट सखियोंके आठ भाव हैं। अष्ट सखियोंके मध्य श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं। जिस प्रियतमाके अधीन होकर प्रियतम निकुञ्जमें निवास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका प्रियतमा कहते हैं। जहाँ स्वाधीनभर्तृका भावका साबल्य हो, वहाँ प्रियतमाके प्रति प्रियतमके द्वारा होनेवाले अनुनय-विनयका आधिक्य रहता है। स्वाधीनभर्तृका भावका यही तथ्य तो एक वाक्यमें बाबा श्रीपुरुषोत्तमजीके समक्ष बोल गये थे। वे बोल अवश्य गये, पर उन्होंने अपने कथनका मर्मोद्घाटन नहीं किया और इसके फलस्वरूप उस समय वह गम्भीर तथ्य अव्यक्त ही रह गया।

इस समय एक प्रसंगकी स्मृति उभर रही है। इससे थोड़ा विषयान्तर

तो होगा, परन्तु यह प्रसंग मननीय है। श्रीरामचरितमानसके सुविख्यात कथा-वाचक पूज्य श्रीमोरारी बापूने यह बात अपने मानस-प्रवचनमें कही थी। पूज्य बापूने कहा कि विश्वके हर धर्मने एक-से-एक उत्तम साधु दिये हैं, पर संत एक मात्र हिन्दू धर्मने दिये हैं।

उनके इस कथनने सारे श्रोताओंको चौंका दिया कि पूज्य बापू कैसी अनोखी बात कह रहे हैं। पूज्य बापूने अपने कथनका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि भगवानके समक्ष जो अपने अभावके लिये रोये, जो अपने पापोंके लिये रोये, जो अपने अपराधोंको क्षमा करवानेके लिये रोये, जो अपने दैन्य-दुःखको दूर करनेके लिये रोये, इस या उस हेतुसे भगवानके सामने रोदन करनेवाले सच्चे साधु विश्वके प्रत्येक धर्ममें उत्पन्न हुए हैं और ऐसे सच्चे साधु हिन्दू धर्ममें भी हुए हैं, पर संत तो केवल हिन्दू धर्मने दिये हैं। 'श्रीहनुमान चालीसा' में आया है 'साधु संतके तुम रखवारे'। 'साधु संत' शब्दका प्रयोग करके गोस्वामी तुलसीदासजीने स्पष्ट संकेत दिया है कि इन दोनोंमें अन्तर है। यदि दोनों शब्द समानार्थक होते तो ऐसा प्रयोग गोस्वामीजी द्वारा नहीं होता। अब प्रश्न उठता है कि साधु और संतमें अन्तर क्या है। साधु है वह, जो भगवानके सामने रोये और संत है वह, जिसके लिये भगवान रोयें। जिसके लिये भगवान रोयें, ऐसा प्रेमी संत विश्व-वन्द्य होता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है –

भरत सरिसको राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।

सारा विश्व भगवान रामका जप करता है और भगवान राम श्रीभरतजीका जप करते हैं। लोग भगवान श्रीकृष्णकी चरणरज चाहते हैं और भगवान श्रीकृष्ण व्रज-गोपियोंकी चरणरज चाहते हैं।

बाबासे हुए प्रश्नोत्तरका विवरण सुनाकर श्रीपुरुषोत्तमजी कहने लगे कि बाबाकी बात समझमें नहीं आयी। भले उनकी समझमें बात न आयी हो, बाबा द्वारा कथित उत्तरको सुनकर मेरा मन बह पड़ा। बाबाने श्रीपुरुषोत्तमजीको उत्तर स्वरूप यही कहा था कि 'अरे, मैं उनके लिये नहीं रोता, बल्कि वे ही मेरे लिये रोते हैं'। बाबा द्वारा दिये गये इस उत्तरको सुनकर मुझे पूज्य श्रीबापूके द्वारा कथित इस प्रसंगकी स्मृति हो आयी।

* * * * *

श्रीडोंगरे महाराजजी की श्रीभागवत-कथा

गीतावाटिकामें लाखों रूपयोंकी लागतसे एक विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ है। यह सारा निर्माण भारतके विख्यात मन्दिर-निर्माण-कला-विशेषज्ञ श्रीसोमपुराजीकी देख-रेखमें नागर शैलीके अनुसार हुआ है। मन्दिरमें प्रतिष्ठित किये जानेवाले भगवद्विग्रह जयपुरसे आये हैं। श्रीराधाकृष्ण, श्रीसीताराम, श्रीपार्वतीशंकर आदिके अनेक विग्रहोंकी प्रतिष्ठा इसी वर्ष मन्दिरमें होगी। प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर भागवत-कथा जैसा कोई सुन्दर एवं भावपूर्ण आयोजन अवश्य होना चाहिये, ऐसी भावना होनेके बाद भी अपनी विविध सीमाओंको देखते हुए आयोजनको बहुत विशाल रूपमें करने-करवानेकी कल्पना हमलोगोंके मनमें नहीं थी। सीमित सामर्थ्यको देखते हुए हमलोगोंकी भावना थी उत्सवको संक्षिप्त रूपमें मनानेकी, किन्तु सर्व-समर्थ प्रभुकी प्रेरणासे सीमातीत रूपवाले अति विशाल उत्सवका आयोजन निश्चित हो गया। भगवानने कितना सुन्दर संयोग संघटित कर दिया कि प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर श्रीमद्भागवत-कथा कहनेके लिये भारतके महान संत पूज्यपाद श्रीडोंगरेजी महाराजका गीतावाटिकामें शुभागमन हुआ।

८ फरवरी१९८५, शुक्रवारसे १७ फरवरी, रविवारतक श्रीडोंगरेजी महाराजने गीतावाटिकाके प्रांगणमें श्रीमद्भागवतकी कथा कही। प्रभुकी कृपासे, संतोंके आशीर्वादसे, स्वजनोंके उत्साहसे, प्रशासनके सहयोगसे एवं कार्यकर्ताओंकी तत्परतासे यह विशद आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

कथाके आयोजनको पूर्व-निश्चित करनेमें बाधाएँ कम नहीं आयीं। कथा हेतु विशाल पंडालका निर्माण, आनेवाले अतिथियोंके आवास एवं भोजनका प्रबन्ध, व्यय-भारका आधिक्य आदि-आदि प्रश्नोंको लेकर हमलोग इधर सचिन्त हो उठते थे तो उधर श्रीडोंगरेजी महाराजकी विवशता थी प्रदत्त आश्वासनोंके कारण। कई मास पूर्व उनका कार्यक्रम निर्धारित हो चुका था कि कब-कब कहाँ-कहाँ भागवत-कथा होगी। जिन तिथियोंमें भागवत-कथा गीतावाटिकामें हुई, वे तिथियाँ गया-धामके लिये

निर्धारित की जा चुकी थीं। बाधाएँ जो भी हों, उन्हींके बीचमेंसे मार्ग निकला। प्रभु-कृपासे सारी बाधाएँ दूर हो गयीं और यह निश्चित हो गया कि गीतावाटिकामें भागवत-कथा ८ फरवरीसे १७ फरवरीतक होगी। सच पूछा जाये तो गीतावाटिकामें कथाके आयोजनको प्रमुखता प्रदान करनेका श्रेय श्रीडोंगरेजी महाराजको ही है।

श्रीडोंगरेजी महाराजके मनमें एक अभिलाषा थी, पर वह थी सुगुप्त। उनकी अभिलाषा थी एक बार गीतावाटिका पधारनेकी। जिन महान रस-सिद्ध संत श्रीपोद्दारजीकी निष्ठा एवं कर्मठताके फलस्वरूप वर्तमान युगकी घोर विषम परिस्थितिमें भगवद्भक्तिकी प्रबल प्रवाहिणी बह चली, भगवन्नामके जप एवं कीर्तनका चतुर्दिक् प्रचार हुआ और श्रेष्ठ भक्ति-साहित्यका विपुल प्रकाशन हुआ, उन परम भागवत श्रीपोद्दारजीकी सौम्य-स्वभावा जीवन-संगिनी, जो वत्सलताकी मूर्ति होनेके कारण पूज्या माँके रूपमें समादृत हैं तथा उनके नित्य सहचर बाबा, जो रसिकताके साक्षात् स्वरूप होनेके कारण राधा बाबाके रूपमें विख्यात हैं, ये दोनों विभूतियाँ गीतावाटिकामें अभी विराज रही हैं, क्यों न उनके दर्शनका लाभ प्राप्त किया जाये? बस, इसी भावनासे श्रीडोंगरेजी महाराजके मनमें एक प्रच्छन्न अभिलाषा थी गीतावाटिका पधारनेकी। पधारनेके लिये भागवत-कथाके आयोजनसे श्रेष्ठ निमित्त और क्या हो सकता था?

भागवत-कथाकी विशद व्यवस्थाके प्रश्नको लेकर हमलोग कुछ घबराये और कुछ हिचकिचाये भी। आयोजनकी विशालताको सोचकर हमलोग सफलताके बारेमें कुछ सशंकित हो रहे थे। व्यवस्थापकत्व और कर्तापनके अहंकारमें हमलोग भूल बैठे कि अपने जनका मन रखनेके लिये प्रभु क्या नहीं कर सकते! 'राम सदा सेवक रुचि राखी'। विविध प्रश्नोंको लेकर हमलोग प्रारम्भमें भले ही कुछ सशंकित संकुचित हो रहे हों, पर यह सब हमलोगोंकी अनास्था और अस्थिरताका ही परिचय देता है। हमलोगोंके अन्तरमें व्याप्त शंका और संकोच व्यर्थ ही दो संतोंके मिलनेमें बाधक तत्त्व बन रहा था। इस आयोजनके सारे सूत्र तो उन सर्व-सूत्रधार प्रभुने अपने परम समर्थ हाथोंमें सँभाल रखे थे और प्रभु-कृपासे असम्भव-सा लगनेवाला कार्य सर्वथा सम्भव हो गया।

सभी लोगोंने बड़ी सराहना की कि गीतावाटिकामें व्यवस्था बहुत

सुन्दर थी, पर उन प्रशंसकोंको क्या पता कि अपने जनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये उन अखिल सूत्रधार सर्वसमर्थ प्रभुने परोक्ष रूपसे हम क्षुद्र जनोंको कितनी और कैसी क्षमता प्रदान कर दी। कार्य तो किया प्रभुने और मिल गया सफलताका श्रेय हम अल्प-मति-गतिवालोंको अनायास-अकारण ही।

जब कथाकी तिथियाँ पूर्णतः निश्चित हो गयीं, तब श्रीडोंगरेजी महाराजने श्रीजयदयालजी डालमियाको बातचीतके बीच बतलाया – बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि बाबा और माँजीके दर्शन करूँ। कथा तो एक बहाना मात्र है। मैं उनको क्या कथा सुनाने लायक हूँ?

जब श्रीडालमियाजीका पत्र गीतावाटिका आया तो पत्रमें लिखित श्रीडोंगरेजी महाराजके ये उद्‌गार बाबाको सुनाये गये। श्रीडोंगरेजी महाराजके इस दैन्यपर बाबा रीझ उठे। इस दैन्यसे बाबाका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिभूत हो उठा और वे कहने लगे – इस दैन्यका कणांश भी हमलोगोंको स्पर्श कर ले तो सारा जीवन शीतल हो उठे।

७ फरवरीको श्रीडोंगरेजी महाराज वायुयानसे गोरखपुर पधारे। गीतावाटिका पहुँचते-पहुँचते संध्या हो आयी थी।

श्रीगिरिराजजी तथा समाधिका दर्शन करते हुए श्रीडोंगरेजी महाराजने भूमिपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरान्त बाबाके श्रीचरणोंमें फल भेंट किया। बाबा तो हाथ जोड़े हुए खड़े थे। हाथ जोड़े-जोड़े बाबाने कहा – करुणानिधानको मैं एक अकिञ्चन संन्यासी भला कौन-सी वस्तु प्रदान करूँ? आपकी अपार एवं अनन्त कृपा है, जो आपने गीतावाटिका पधारनेका कष्ट स्वीकार किया। आपके पावन चरणोंका स्पर्श पाकर गीतावाटिकाकी यह भूमि पवित्र हो गयी।

बाबाके इन शब्दोंको सुनकर श्रीडोंगरेजी महाराजकी आँखें भर आयीं। श्रीडोंगरेजी महाराज बाबाके पास पाँच-सात मिनट बैठे होंगे। फिर स्नानादिसे निवृत्त होनेके लिये अपने निवास-कुटीरमें चले आये।

निवास-कुटीरमें श्रीडोंगरेजी महाराजके चले जानेके बाद बाबाने भाव-भीने स्वरमें कहा था – श्रीडोंगरेजी महाराजका शुभागमन महान्-महान् सुयश एवं सुमंगलका विधायक है।

फाल्गुन कृष्ण तीज, शुक्रवार, ८ फरवरीके दिन पूर्वाह्न वेलामें श्रीडोंगरेजी महाराजकी भागवत-कथा आरम्भ हुई। कथाके श्रोताओंसे पंडाल

भरा हुआ था, पर इस कथाके मुख्य श्रोता थे बाबा एवं पूज्या माँ। माँ समयसे पहले ही पंडालमें आ गयीं। माँका आसन तो मंचके नीचे स्त्री-श्रोताओंके साथ लगाया गया था, पर श्रीमद्भागवतपुराणकी आरती करनेके लिये माँ मंचपर पधारीं। मंचपर एक ओर व्यासासनके समीप ही बाबाके विराजनेके लिये एक उच्चासन लगाया गया था। बाबा अपने आसनपर विराज रहे थे। ज्यों ही श्रीडोंगरेजी महाराज मंचपर पधारे, बाबा एवं माँ उनके स्वागतमें खड़े हो गये। श्रीडोंगरेजी महाराजने भूमिपर माथा टेककर माँको प्रणाम किया। माँने भी श्रीडोंगरेजी महाराजको प्रणाम किया। तदुपरान्त श्रीडोंगरेजी महाराजने बाबूजीके चित्रात्मक श्रीविग्रहको माल्यार्पण किया और अंतमें बाबाको साष्टांग प्रणाम करके पुष्पहार पहनाया। बाबा तो हाथ जोड़े-जोड़े झुके-झुके खड़े थे। बाबाने भी श्रीडोंगरेजी महाराजको पुष्पहार समर्पित किया। परस्पर प्रणामका यह अद्भुत भावपूर्ण दृश्य दस दिनोंतक प्रतिदिन देखनेको मिलता रहा। कई लोग तो इस दृश्यको देखनेके लोभमें आगे बैठा करते थे।

एक दिन माँको आनेमें कुछ विलम्ब हो गया तो श्रीडोंगरेजी महाराज व्यासासनपर बैठे-बैठे माँकी प्रतीक्षा करते रहे। माँ आयीं और ज्यों ही मंचपर पधारीं, त्यों ही व्यासासनसे उठकर-उतरकर श्रीडोंगरेजी महाराजने बड़े भक्ति-भाव-पूर्वक माँको प्रणाम किया। श्रीडोंगरेजी महाराज प्रणाम कर रहे थे माँको और हमलोग प्रणाम कर रहे थे श्रीडोंगरेजी महाराजकी भक्ति-भावनाको। अहंता-शून्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रद्धा-भावनाकी वन्दना जितनी भी की जाये, वह कम ही रहेगी।

भागवत-कथाके तीन-चार दिन बीत जानेके बाद माँने अपने निजी परिकर कृष्णजीके द्वारा श्रीडोंगरेजी महाराजको कहलवाया – मैं सर्वथा अनपढ़ हूँ और एक अति साधारण वैश्य महिला हूँ। आप मुझे प्रणाम करते हैं, इससे मुझे बड़ा संकोच होता है। आप तो हर प्रकारसे वन्दनीय हैं।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कृष्णजीको बड़े विनम्र स्वरमें उत्तर दिया – माँको मेरी ओरसे प्रणाम करना और फिर मेरी ओरसे निवेदन करना कि वे नहीं जानतीं कि वे वस्तुतः क्या हैं। उनकी महानताका थोड़ा आभास मुझे है। वे तो माँ हैं, जगदम्बा-स्वरूपा हैं, संकोच करनेके स्थानपर तो उन्हें मुझे आशीर्वाद देना चाहिये, मुझपर कृपा करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतपुराणका पूजन एवं नीराजन करनेके लिये जब माँ

मंचपर पधारतीं तो एक और भी सुन्दर दृश्य प्रायः देखनेको मिलता। जब माँ श्रीमद्भागवत पुराणपर पुष्प-वस्त्र-नैवेद्यादि चढ़ानेके लिये अपना हाथ पसारतीं तो कई बार ऐसा होता कि व्यासासनपर बैठे-बैठे ही श्रीडोंगरेजी महाराज अपना हाथ फैलाकर माँके हाथसे पुष्पादि ले लेते तथा श्रीमद्भागवतजीपर अर्पित कर देते। ऐसा इसलिये कि अति वृद्धा माँको अधिक झुकना न पड़े। यह सुन्दर दृश्य तो कई बार देखनेको मिलता और होता बड़ा ही भावपूर्ण। इस समय माँके अधरोंकी परम पावनी मुस्कानमें जादूका-सा प्रभाव रहा करता था। परस्पर प्रणाम करते समय, श्रीमद्भागवतकी पूजा करते समय तथा व्यासासनकी परिक्रमा लगाते समय माँके मुखकी मुस्कानसे प्रसन्नताके जो फूल झरते थे, उन फूलोंकी मधुरिमा मंचके सारे वातावरणपर छा जाया करती थी। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि उस समयका दृश्य मैं कैसे प्रस्तुत कर दूँ! माँके मुखश्रीकी दिव्य आभासे सारा मंच उद्भासित हो उठता था। एक अवर्णनीय स्तरकी दिव्यता, सचमुच सर्वथा अनुभवगम्य भव्यतासे कण-कण ओत-प्रोत हो उठता था।

माँ और बाबा जैसे श्रोताओंकी उपस्थितिसे भागवत-कथाके मण्डपकी शोभा अत्यधिक बढ़ गयी थी। वे इस मण्डपकी एक आध्यात्मिक भावमयी शोभा थे। केवल शोभा ही नहीं बढ़ी, उनकी उपस्थितिसे कथाका रस और कथाका प्रभाव अनन्त गुना अधिक बढ़ गया। भागवत-कथाका यह आयोजन तो त्रिवेणी संगमका साकार रूप था। भागवतकी कथा कही जा रही थी गीतावाटिकाकी स्थलीमें। गीतावाटिकाकी यही पुण्यस्थली है, जहाँ बाबूजीद्वारा हिन्दू धर्मके संरक्षणका, हिन्दू शास्त्रोंके प्रकाशनका, भगवन्नामके वितरणका, भगवद्भक्तिके प्रचारका, मानवीय सद्गुणोंकी प्रतिष्ठाका और आर्त जनोंकी सेवाका महान कार्य आजीवन होता रहा और हुआ उनकी वाणीके द्वारा, लेखनीके द्वारा और सबसे अधिक जीवन-शैलीके द्वारा। इन सभी महान कार्योंसे अलग बाबूजीका जीवन एक अनुपम एवं आदर्श उदाहरण था भगवल्लीला-सिंधुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेवाले एक प्रच्छन्न महान रसिक संतका। ऐसे प्रच्छन्न महारसिक बाबूजीकी महाकार्यस्थली गीतावाटिकामें यह भागवत-कथा कही जा रही थी और कही जा रही थी कथा-रस-रसिक सिद्ध संत पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजद्वारा, जो आजके युगके साक्षात् शुकदेव-स्वरूप थे। फिर इस कथाके मुख्य श्रोता थे बाबा एवं माँ। प्रभु-कृपासे यह कैसा दुर्लभ संयोग घटित हो गया कि सिद्ध

संतकी महाकार्यस्थलीमें सिद्ध संतद्वारा सिद्ध संतोंके समक्ष कथा कही गयी। यह कथा-आयोजन एक त्रिवेणी संगम ही था और गीतावाटिकामें अवतरित इस प्रत्यक्ष त्रिवेणी संगममें अवगाहन करनेके लिये अवश्य आगमन हुआ होगा ऋषि-मुनियोंके मण्डलका। श्रीडोंगरेजी महाराजने स्वयं ही भागवत-कथाके मध्य एक बार कहा था – भागवतकी कथाको सुननेके लिये श्रीगंगामहारानी, श्रीयमुनामहारानी, पवर्तराज, तीर्थराज, ऋषि-महर्षि आदि भी पधारते हैं। यदि वक्ता विवेकपूर्वक सावधान होकर कथा नहीं कहे, तो वह अपराधका भागी होता है।

व्यासासनपर श्रीडोंगरेजी महाराजके विराज जानेके बाद हमलोगोंको यही अनुभव होता था कि हमलोग एक दिव्य लोकमें बैठे हुए एक महान संतके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवतकी कथाका श्रवण कर रहे हैं। श्रीडोंगरेजी महाराजकी कृति और प्रकृतिकी पूर्ण छाप उनकी आकृतिपर परिलक्षित होती रही। श्रीडोंगरेजी महाराजके श्रीमुखसे निःसृत एक-एक शब्दके पीछे उनका तपोनिष्ठ जीवन था। यही हेतु था कि उनके शब्द श्रोताओंके हृदयमें प्रवेश कर जाते थे तथा श्रोताके सम्पूर्ण अस्तित्वको प्रभावित करते थे। पंडालमें बैठे हुए श्रोतागण दत्तचित्त होकर कथा सुनते थे। कथा सुननेवालोंमें स्त्री-श्रोताओंकी संख्या अधिक थी। ऐसा होनेके बाद भी पंडालमें पूर्ण शान्ति रही, यह श्रीडोंगरेजी महाराजके व्यक्तित्व एवं वक्तृत्वका ही चमत्कार रहा। पंडालमें इतनी शान्ति थी कि वृक्षपर बैठे हुए कौएके बोलनेकी आवाज साफ-साफ सुनायी देती थी। सौ गजकी दूरीपर झाड़ू लगानेसे उत्पन्न होनेवाली आवाज भी विघ्न समान लगती थी। सड़कपर आने-जानेवाली ट्रक-बस-कार-स्कूटरके हॉर्नकी आवाज कानोंको चुभती थी। सूर्यास्तके बाद कथाके समय कई बार बिजली चली जाती। पंडालमें अंधकार छा जाता, इसके बाद भी सब श्रोता चुपचाप कथा सुनते रहते। कथाके पंडालमें ऐसी शान्ति क्वचित् ही देखनेको मिलती है। इस पूर्ण शान्तिका, मेरी दृष्टिमें, एक मात्र हेतु रहा श्रीडोंगरेजी महाराजका परमोज्ज्वल संतत्व और प्रभावकारी वक्तृत्व। श्रीडोंगरेजी महाराज भागवत-कथामें वही बोलते थे, जो उनके जीवनका सत्य था। जिन सिद्धान्तोंको चिन्तन-मननके द्वारा उन्होंने अपने मनसे स्वीकार किया और जिन सिद्धान्तोंको सतत साधनाके द्वारा उन्होंने अपने आचरणमें उतार लिया, उन श्रेष्ठ सिद्धान्तोंका आचरणसे एकीकरण, इस तथ्यने ही उनके

जीवनमें अचिन्त्य परमोज्ज्वलता भर दी थी और इस परमोज्ज्वलताकी प्रभावोत्पादकता और भी अधिक बढ़ गयी थी प्रसंगोंको प्रस्तुत करनेकी रोचक शैलीके कारण। हिन्दी भाषामें गुजराती अथवा मराठी भाषाका पुट बड़ा प्यारा लगता था। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवनमें आजकल जो अभद्रताएँ-अनैतिकताएँ-अनास्थाएँ प्रवेश कर गयी हैं, उनपर श्रीडोंगरेजी महाराज कभी-कभी तीखा व्यंग्य भी करनेसे नहीं चूकते थे। कथाके प्रवाहमें कभी-कभी विभिन्न संतोंके चरित्रोंको सुनानेके कारण श्रोताओंका आकर्षण बढ़ता ही जाता था और कथाके बीच-बीचमें वे कभी-कभी ऐसे सूत्र-वाक्य बोल जाया करते थे, जिनसे जीवनके संस्कारमें-शृंगारमें सहायता मिले। सबसे प्रधान बात यह थी कि श्रीडोंगरेजी महाराजके प्रवचनमें उनके आचरण-सिद्ध सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन होता था। इतना ही नहीं, हमलोगोंने भावपूर्ण प्रसंगोंका वर्णन करते समय उनको विह्वल होते देखा है, उनकी वाणीको अवरुद्ध होते देखा है, उनके हृदयको द्रवित होते देखा है, उनके नेत्रोंको सजल होते भी देखा है और अनेक बार उनके श्रीअंगोंमें दैवी आवेशको अवतरित होते भी देखा है। सचमुच, व्यासासनपर बैठनेके बाद श्रीडोंगरेजी महाराज नहीं बोलते थे, अपितु उनका वैष्णव हृदय बोलता था और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह था कि प्रत्येक श्रोताको वैष्णव जीवन अंगीकार करनेकी प्रेरणा मिलती थी। स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन, चतुर-मूर्ख, गृहस्थ-विरक्त, साधारण-असाधारण, चाहे कोई भी हो, कैसा भी श्रोता हो, उसको बाध्य होकर आत्म-निरीक्षण करना ही पड़ता था और इस निर्णयपर पहुँचना ही पड़ता था कि मानव जीवनकी सफलता श्रीकृष्ण-दर्शनमें ही है। श्रीडोंगरेजी महाराजकी स्पष्ट मान्यता थी और उन्होंने उच्च स्वरसे अपनी कथामें भी कहा – यदि श्रोता मन लगाकर कथा सुने तो कथा सुननेके बाद जीवनमें परिवर्तन आना ही चाहिये। भागवत-कथा सुननेके बाद राजर्षि परीक्षितको भगवान श्रीकृष्णकी प्राप्ति हुई थी। हमारे जीवनमें कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिये कि भगवान श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह जग जाये। भगवान श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन करनेके लिये ही मनुष्यका जन्म मिला है।

माँ जब कथा सुनकर आतीं तो भाव-भरे मनसे वे बस इतना ही कहतीं – आज तो महाराजजीने निहाल कर दिया।

कथा सुनकर जब बाबा अपनी कुटियापर आते तो हमलोगोंके समक्ष बोल उठते – यह भागवत-प्रवचन क्या है मानो उमड़ता हुआ भक्ति-सिन्धु है।